शंकरदत्त शर्मा
२७/८/१९३४

ओ३म् ।
" तत्सत्परब्रह्मपरमात्मने नमः "

अथ

ईश्वर निराकार निरूपणम्

श्रीयुत पं० सूर्यदत्त शर्म्मणार्योपदेशकेन
वेदादि सच्छास्त्र प्रमाणा लङ्कृतया
व्याख्यया संस्कृतम्

"यच्च"
पं० राधाकृष्ण शर्म्मणः (प्रधानार्य्य समाज) हीयरखेड़
निवासिनः सम्मत्या सहाय्येन च

नरसिंहपुर नगरे
सरस्वती विलास नाम्नियंत्रे मुद्रापयित्वा
प्राकाश्यं नीतम्

सम्वत् १९९१ वैक्रमाब्दे
मुद्रणाद्यधिकारः ग्रन्थ कर्त्रा स्वायत्ती कृतः ।

प्रथम संस्करणम् १०००

मूल्यम् चार आणकः ।)

ओ३म्।

भूमिका ॥

पाठक गण! इसमें सन्देह नहीं कि आर्य्यावर्त्त देश अविद्या वश अपने सत् सिद्धान्त (वैदिक धर्म) का परित्याग कर नाना प्रकार के मत और पन्थ का आश्रय ले ईश्वर से विमुख हो प्रकृत्यादि की उपासना करने लगा, जिससे यह देश विद्या धनादि ऐश्वर्य्य को नष्ट करता हुआ अधःपतन को प्राप्त हो गया और होता भी जाता है अस्तु, संसार रूपी दुःख, सागर से पार होने के लिये परमेश्वरीय ज्ञान ही एक मात्र जहाज है (तमेव विदित्वाति मृत्यु मेतिनान्यः पन्थाविद्यतेऽयनाय०) यजु० ॥

बिना परमात्मा के जाने (प्राप्त किये) यथार्थ सुख नहीं मिल सकता, अतएव एतद्विषयक ज्ञान होने के लिए यह "ईश्वर निराकार निरूपण" नाम की पुस्तक प्रकाशित की जाती है।

आशा है कि धार्मिक जन सत्य का अवलम्बन करते हुए परमेश्वर के यथार्थ स्वरूप को जानेंगे।

आ. स.
पचराँव सुनार
जि० मिरजापुर
१।१।१९

भवदीय
सूर्यदत्त शर्मा
आर्य्योपदेशक।

विज्ञप्ति ।

सर्व महाशयों को विदित हो कि "अष्टा दश पुराण समीक्षा" नाम की पुस्तक भी बन रही है शीघ्र तैयार होगी ।

प्रथम जो ग्राहक होंगे उन्हें १) में दीजायगी, पश्चात् १॥) लगेगा अतः जिन्हें लेना हो ग्राहक श्रेणी में नाम लिखावें ।

पता-सूर्य्यदत्त शर्मा
उपदेशक
आ० स० पचराँव पो० सीखड़
ज़िला मिरज़ापुर ।

ओ३म् ।

अथेश्वर निराकार निरूपणम्

नहिं सत्यात्परंबलम्

ओ३म् असतो मासत् गमय तमसो माज्योति गमय मृत्योर्माऽमृतं गमयेति ॥ शतपथ॥

ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

हे परमात्मन् ! आप हम लोगों को असत् मार्ग से पृथक कर सन्मार्ग में प्रवृत्त कीजिये और अविद्यान्धकार से छुड़ाकर विद्यारूप सूर्य्य को प्राप्त कीजिये तथा मृत्यु के दुःख से निकास के अमृत रूप मोक्ष को प्राप्त कराइय ।

व्याख्या ।

वेदाह मेतं पुरुषं महान्त मादित्य वर्णं तमसः परस्तात् । तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽय नाय ॥

यजुः ३१ । १८॥

वह परमात्मा सम्पूर्ण संसार में व्यापक बड़ों से बड़ा कि जिस से बड़ा वा तुल्य दूसरा नहीं सूर्य्यादि का रचने वाला प्रकाशक वही एक (परमात्मा) है जो स्वयं प्रकाशमान अविद्यादि क्लेशों से रहित और सर्व प्राणियों को सुख देने वाला है उसी परमात्मा की कृपा से मनुष्य मोक्ष प्राप्त कर सकता है अर्थात् उसी सर्व शक्तिमान को जानता हुआ जीव जन्म मरणादि दुःखों से निकल कर आनन्द प्राप्त करता है, अतः उसी परमेश्वर की उपासना करनी योग्य है, अन्य की नहीं। आज कल परमेश्वर के स्वरूप को यथावत न जानते हुए स्वार्थी जन मूर्ति पूजादि कर रहे हैं जिससे सर्व साधारण को यह ज्ञात करना दुस्तर हो रहा है कि परमेश्वर क्या पदार्थ है और वह निराकार है या साकार। क्योंकि वेद में उपदेश किया है कि "अन्धः तमः प्रविशन्ति ये ऽसम्भूति मुपासते" इत्यादि। अर्थात वह लोग घोर नरक में पड़ते हैं जो प्रकृत्यादि की उपासना करते हैं। और इस के विरुद्ध मूर्ति पूजा करने वाले परमात्मा का साकारपन शास्त्रानुसार सिद्ध कर मूर्ति पूजा को मोक्ष का साधन बतलाते हैं। इसलिये परमेश्वर जोकि निराकार अव्यय नित्य शुद्ध बुद्ध सच्चिदानन्दादि गुणयुक्त है वह वेद शास्त्रानुसार निरूपण किया जाता है और पौ० महाशयों ने जिन २ प्रमाणों द्वारा मूर्ति पूजाद्यवतार विषय सिद्ध किए हैं उनका भी संक्षेपतः निराकरण किया गया है। साकार वह पदार्थ है जोकि इन्द्रियों से जाना जाय। जैसे अग्नि जल पृथिव्यादि किन्तु परमात्मा इन तत्वों से अधिक शक्तिमान होता हुआ भी इन के समान साकारवान नहीं है और न तुच्छ २ कामों के लिये अवतारादि लेता है, अर्थात् वह अपने कार्य्य में किसी की भी सहायता नहीं लेता और न जीवात्मा के समान शरीरादि धारण करता है यथा—

अथेश्वर निराकार विषये वैदिक प्रमाणम् ।

अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनद्देवा आप्नुवन् पूर्वमर्षत् । तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत् तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति ॥

यजुर्वेद अ० ४० । मं० ४॥ १॥

भाष्यम्—(अनेजत्) न एजते कम्पते तदचलत् स्वावस्थाया- श्च्युतिः कम्पनं तद्रहितम् (एकम्) अद्वितीयम् ब्रह्म (मनसः) मनोवेगात् [जवीयः] अतिशयेन वेगवत् [न] (एनत्) (देवाः) चक्षुरादीनीन्द्रियाणि (आप्नुवन्) प्राप्नुवन्ति (पूर्वम्) पुरः सरं पूर्णं [अर्षत्] गच्छत् (धावतः) विषयान्प्रति पततः (अन्यान्) स्व स्वरूपा द्विलक्षणान्मनो वागिन्द्रियादीन् (अति) उल्लंघने [एति] प्राप्नोति गच्छति (तिष्ठत्) स्व स्व रूपेणास्थिरं सत् (तस्मिन्) सर्वत्राऽभिव्याप्ते (अपः) कर्म क्रियां वा (मा- तरिश्वा) मातर्यन्तरिक्षेश्वसिति प्राणान् धरति वायुस्तद्वद्वर्त्तमानो जीवः (दधाति) ॥ य० ४० । ४ ॥ १ ॥

भावार्थ—हे विद्वान् मनुष्यो जो (एकम्) एकही अद्वितीय [अनेजत्] नहीं कम्पने वाला अर्थात् अचल अपनी अवस्था से हटना कम्पन कहाता है उससे रहित (मनः) मन के वेग से भी [जवीयः] अति वेगवान् (पूर्वम्) सब से आगे (अर्षत्) चलता हुआ अर्थात् जहां कोई चल के पहुंचे वहां प्रथम ही सर्वत्र व्याप्ति से पहुंचता हुआ ब्रह्म है (एनत्) इस पूर्वोक्त ब्रह्म को (देवाः) इन्द्रियां (न) नहीं (आप्नुवत) प्राप्त होते (तत्)

यह ब्रह्म अपने आप (तिष्ठत्) स्थिर हुआ अपनी अनन्त व्याप्त (धावतः) विषयों की ओर गिरते हुए (अन्यान्) अन्य के स्वरूप से बिलक्षण मन वाणी आदि इन्द्रियों की (अतिएति) उल्लंघन कर जाता है (तस्मिन) उस सर्वत्र अभिव्याप्त ईश्वर की स्थिरता में (मातरिश्वा) अन्तरिक्ष में प्राणों के धारण करने हारे वायु के तुल्य जीव (अपः) कर्म वा क्रिया को (दधाति) धारण करता है यह जानो। ॥ य० ४० । ४॥ १॥

सपर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳ शुद्धमपापविद्धम् ॥ कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान्व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥

य० अ० ४०। ८ ॥ २ ॥

भाष्यम्—यः (कविः) सर्वज्ञः (मनीषी) सर्वसाक्षी (परिभूः) सर्वोपरि बिराजमानः (स्वयंभू) अनादि स्वरूपः परमेश्वरः [शाश्वतीभ्यः] नित्याभ्यः समाभ्यः प्रजाभ्यो वेद द्वाराऽन्तर्यामितयाच यथा तथ्यतोऽर्थान व्यदधात बिहितवानस्ति पर्य्यगात सर्वव्यापकोऽस्ति। यत (शुक्रम्) वीर्य्यवत्तमम् (अकायम) मूर्ति जन्म धारण रहितम् (अव्रणम) छेद भेद रहितम (अस्नाविरम्) नाड़ी बन्धनादि विरहम् (शुद्धम्) निर्दोषम् (अपापविद्धम) पापात्पृथक भूतम् यदींदश लक्षणं ब्रह्म सर्वैरुपासनीय मिति मन्यध्वम्॥ इत्यनेनापि शरीर जन्म मरण रहित ईश्वरः प्रतिपाद्यते ॥

भाषार्थ—वह परमात्मा सर्व व्यापी है जो सब जगत में परिपूर्ण हो रहा है सो ब्रह्म अनन्त बल युक्त शरीर से रहित शुद्ध अक्षत, छिद्र रहित स्नायुशिरा वर्जित है, और वह प्रभु पापरहित, सर्वदर्शी सर्व का अन्तर्यामी, सर्वोपरि विराजमान स्वयं होने वाला अर्थात् जिसका कोई कारण नहीं अनादि अनन्त है जिसने प्रजा के सुख के लिए सृष्टि के आदि में सत्य अर्थों का उपदेश किया है

वही ब्रह्म है ॥ उसी की उपासना करणीय है ॥ २ ॥

तदेवाग्नि स्तदादित्यस्तद् वायुस्तदु चन्द्रमाः ।
तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः ॥

य० । अ० ३२ मं० १ ॥ ३॥

भाष्यम्–(तत्) सर्वज्ञ सर्व व्यापि सनातन मनादि सच्चिदानन्द स्वरूपं नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभावं न्यायकारि दयालु जगत् स्रष्टृ जगद्धर्तृ सर्वान्तर्यामि (एव) निश्चये (अग्निः) ज्ञात स्वरूपत्वात् स्व प्रकाशत्वाच्च (तत्) (आदित्यः) प्रलये सर्वस्या दातृत्वात् (तत्) [वायुः] अनन्त वलत्व सर्वधर्तृत्वाभ्याम् (तत्) (उ) (चन्द्रमाः) आनन्द स्वरूप त्वादाह्लाद कत्वाच्च (तत्) (एव) (शुक्रम्) आशु कारित्वाच्छुद्ध भावाच्च (तत्) (ब्रह्म) सर्वेभ्यो महत्वात् (ताः) (आपः) सर्वत्र व्यापकत्वात् (सः) (प्रजापतिः) सर्वस्याः प्रजायाः स्वामित्वात् ॥१ ॥ ३ ॥

भाषार्थ–हे मनुष्यो (तत्) वह सर्वज्ञ सर्वव्यापि सनातन अनादि सच्चिदानन्द स्वरूप नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव न्यायकारी दयालु जगत का श्रष्टा धारण कर्त्ता और सर्व का नियन्ता अन्तर्यामी (एव) ही (अग्निः) ज्ञान स्वरूप और स्वयं प्रकाशित होने से अग्नि (तत्) वह (आदित्यः) प्रलय समय सब को ग्रहण करने से आदित्य (तत्) वह [वायुः] अनन्त वलवान और सबका धर्त्ता होने से वायु [तत्] वह (चन्द्रमाः) आनन्द स्वरूप और आनन्द कारक होने से चन्द्रमा (तत्एव) वही (शुक्रम्) शीघ्रकारी और शुद्ध स्वभाव से शुक्र (तत् वह (ब्रह्म) महान होने से ब्रह्म (ताः) वह [आपः] सर्वत्र व्यापक होने से

Scanned with CamScanner

आपः (उ) और [सः] वह (प्रजापतिः) सब प्रजा का स्वामी होने से प्रजापति ऐसा तुम लोग जानो ॥ य०३८। मंत्र १॥२ ॥

सर्वे निमेषा जज्ञिरे विद्युतः पुरुषादधि ॥ नैनमूर्ध्वं न तिर्यञ्चं न मध्ये परिजग्रभत् ॥

य० अ०।२ ॥ ४ ॥ ३२॥

भाष्यम्–(सर्वे) (निमेषाः) नेत्रोन्मीलनादि लक्षणाः कला काष्ठादि कालाऽवयवाः (जज्ञिरे) जायन्ते [विद्युतः] विशेषेण द्योतमानात् [पुरुषात्] पूर्णात विभोः (अधिः) [न] निषेधे (एनम्) परमात्मानम् (उर्द्ध्वम्) उपरिस्थम् (न) (तिर्यञ्च) तिर्य्यक्कुस्थित् मध्यस्थं वा (न) (मध्ये) (परि) सर्वतः (जग्रभत्) गृहणाति ॥ य० ३८। २॥ ४॥

भाषार्थ–हे मनुष्यो जिस (विद्युतः) विशेष कर प्रकाशमान् (पुरुषात्) पूर्ण परमात्मा से (सर्वे) सब (निमेशाः) निमेष कला काष्ठादि काल के अवयव (अधिजज्ञिरे) अधिकतर उत्पन्न होते हैं उस (एनम्) इस परमात्मा को कोई भी (न) न (ऊर्द्धम्) ऊपर (न) (तिर्यञ्च) तिरछा वा सब दिशाओं में वा नीचे और (न) न [मध्ये] बीच में ग्रहण किया जाता है, किन्तु (परिजग्रभत्) सब ओर से ग्रहण कर सकता है उसको तुम लेवो ॥य० ३८। २ ॥४ ॥

न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः हिरण्य गर्भ इत्येष मा मा हि ँ सीदित्येषा यस्मान्नजातः इत्येषः ॥ य० अ० ३२। मं० ३॥

भाष्यम्–[न] निषेधे(तस्य) परमेश्वरस्य (प्रतिमा) प्रति मीयते

यया तत् परिमापकं सदृशं तोलन साधनं प्रतिकृतिराकृतिर्वा (अस्ति) वर्त्तते (यस्य) परमेश्वरस्य (नाम) नामस्मरणम् (महत्) पूज्यं बृहत् (यशः) कीर्त्तिकरं धर्म्म कर्माचरणम् (हिरण्यगर्भः) सूर्य्य विद्युदादि पदार्थकरणः (इति) (एषः) अन्तर्यामि तया प्रत्यक्षः (मा) निषेधे (मा) मां जीवात्मानम् (हिंसीत) हन्यात ताड़येत् विमुखं कुर्यात् (इति) (एषा) प्रार्थना प्रज्ञा वा (यस्मात्कारणात्) (न) निषेधे (जातः) उत्पन्नः (इति) (एषः) परमात्मा ॥

य० ॥अ० ३२। ३॥ ५॥

भाषार्थ–जिसका (महत्) पूज्यबड़ा (यशः) कीर्तिकरनेहारा धर्म युक्त कर्म का आचरण ही (नाम) नामस्मरण है जो (हिरण्यगर्भः) सूर्य विजली आदि पदार्थों का आधार (इति) इस प्रकार (एषः) अन्तर्यामी होने से प्रत्यक्ष जिसकी (मा) मुझको (माहिंसीत्) मत ताड़ना दे वा वह अपने से मुझे विमुख मत करे (इति) इस प्रकार (एषा) यह प्रार्थना वा बुद्धि और (यस्मात्) जिस कारण (न) नहीं [जातः] उत्पन्न हुआ (इति) इस प्रकार (एषः) यह परमात्मा उपासना के योग्य है ॥ (तस्य) उस परमेश्वर की [प्रतिमा] प्रतिमा परिणाम उसके तुल्य अवधि का साधन प्रतिकृति मूर्ति व आकृति (नआस्ति) नहीं है ।३।

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात् । सं बाहुभ्यां धमति सं पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन्देव एकः ॥

य० अ० १७ १९॥६॥

भाष्यम्–(विश्वतश्चक्षु) विश्वतः सर्वस्मिञ्जगति चक्षुर्दर्शनं यस्यसः [उत] अपि [विश्वतोमुखः] विश्वतः सर्वतोमुख मुपदे-

शनमस्यसः [विश्वतोबाहुः] सर्वतोबाहु र्बलं वीर्य्यं वा यस्यसः (उत) अपि (विश्वतस्पात्) विश्वतः सर्वत्रपात् गति र्व्याप्तिर्यस्यसः [सम्] सम्यक (बाहुभ्याम्) अनन्ताभ्यांबल वीर्य्याभ्याम् (धमति) प्राप्नोति ॥ धमतीति गतिर्कर्मा० निघंटु २।१४॥ (सम) (पत्तत्रैः) पतनशीलैः परमाण्वादिभिः (द्यावाभूमी) सूर्य्य पृथिवी लोकौ [जनयन्] कार्य्य रूपेण प्रकटयन् सन् (देवः) स्वप्रकाशः [एकः] अद्वितीयोऽसहायः ॥ य० १७।१६।

भावार्थ–हे मनुष्यो तुम लोग जो [विश्वतश्चक्षुः] सब संसार को देखने [उत] और [विश्वतोमुखः] सब ओर से सबको उपदेश करने हारा (विश्वतोबाहुः) सब प्रकार से अनन्त बल तथा पराक्रम से युक्त (उत) और (विश्वतस्पात्) सर्वत्र व्याप्तिवाला (एकः) अद्वितीय सहाय रहित (देवः) अपने आप प्रकाश स्वरूप (पतत्रैः) क्रिया शील परमाणु आदि से (द्यावाभूमी) सूर्य और पृथिवी लोक को (संजनयन्) कार्य्य से प्रगट करता हुआ (बाहुभ्याम्) अनन्त बल पराक्रम से सब जगत को (संधमति) सम्यक प्राप्त हो रहा है उसी परमेश्वर को अपना सब ओर से रक्षक उपास्य देव जानो ॥१६

अनुत्तमा ते मघवन् नकिर्नु नत्वा वाँ अस्ति देवता विदानः। न जायमानो नशते न जातो यानि करिष्या कृणुहि प्रवृद्ध ॥

३३।७६॥७॥

भाष्यम्–(अनुत्तम्) अप्रेरितम् ॥ नसत्त निसत्तानुत्त० अ०८।४ ६१॥ इति निपातनम (आ) स्मरणे ते मघवन् बहु धनयुक्तः (नकिः) आकांक्षायाम् (नु) सद्यः (न) (त्वावान्) त्वयासदृशः (अस्ति) [देवता] देव एव देवता। स्वार्थेतल (विदानः) विद्वान (न) (जायमानः)

उत्पद्यमानः (नशते) व्याप्नोति । नशदितिव्याप्ति कर्म्मा० निघंटु २ ॥१८॥ (न) (जातः) उत्पन्नः (यानि) जगदुत्पत्त्यादि कर्म्माणि (करिष्या) करिष्यसि । सिउलोपो दीर्घश्चात्रछान्दसः (कृणुहि) करोसि लडर्थेलोटप्रसिद्धः॥

भाषार्थ—हे (प्रवृद्ध) सब से श्रेष्ठ सर्व पूज्य (मघवन्) बहुधन वाले युक्त ईश्वर जिस (ते) आपका (अनुत्तमम्) अप्रेरित स्वरूप है (त्वावान्) आपके सदृश (देवता) पूज्यइष्ट देव (विदानः) विद्वान [नु] निश्चय करके कोई (न) नहीं है आप (जायमानः) उत्पन्न होने वाले (न) नहीं और (जातः) उत्पन्न हुए भी नहीं हैं (यानि) जिन जगत को उत्पत्ति आदि कर्मों को (करिष्यासि) करोगे तथा (कृणुहि) करते हो उनको कोई भी (नाकिः) नहीं (आनशते) स्मरणशक्ति से व्याप्त होता सो आप सब के उपास्य देव हो ॥७॥

नत्वा वां अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते । अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवामहे ८ ॥साम० उ० १ ।१॥

भाष्यम्—(मघवन्) मखवन् (इन्द्र) परमेश्वर (त्वावान्) त्वत्सदृशः (अन्यः) द्वितीयः (दिव्यः) द्युलोके भवः (न) नास्ति (पार्थिवः) पृथिवी लोके भवोऽपि (न) नास्ति (न) नैव (जातः) पूर्वं जातः [न] नच [जनिष्यते] उत्पत्स्यते [अश्वायन्तः] अश्वान् प्राणानिच्छन्तः [वाजिनः] बलमन्नं वेच्छन्तः [गव्यन्तः] गा इन्द्रियाणीच्छन्तो वयम् [त्वा] त्वाम् (हवामहे) स्तुमः प्रार्थयामश्च ॥

भाषार्थ— (मघवन्) यज्ञवाले (इन्द्र) परमेश्वर (त्वावान्) आप के तुल्य [अन्यः] और कोई [दिव्यः] द्युलोकस्थ [न] नहीं

है (न) और न [पार्थिवः] पृथिवी लोकस्थ है [न] नतो (जातः) पूर्व उत्पन्न हुआ और (न) न (जनिष्यते) आगे उत्पन्न होगा (अश्वायन्तः) प्राण चाहते हुए (वाजिनः) अन्न या बल चाहते हुवे और (गव्यन्तः) इन्द्रियां चाहते हुवे हम (त्वा) आपको [हवामहे] स्तुति प्रार्थना करके पुकारते हैं ॥

नोट–इस मंत्र में भी परमात्मा को अजन्मा बतलाया है अर्थात् अवतारादि नहीं लेता ॥

तमिद् गर्भम्प्रथन्दध्रऽआपो यत्रदेवाः समगच्छन्त विश्वे अजस्य नाभा वध्ये कमर्पितम् । यस्मिन् विश्वानि भुवनानि तस्थुः॥ यजु० । ३० ॥ ६ ॥

भाष्यम्–(तम्) (इत) एव (गर्भम्) सर्वलोकानुत्पत्ति स्थानं प्रकृत्याख्यम् [प्रथमम्] विस्तृतमनादि [दध्रे] दधीरे (आपः) कारणाख्याः जीवाःप्राणा वा [यत्र] यस्मिन् ब्रह्मणि (देवाः) दिव्यात्मान्तः करण योगविदः [समगच्छन्त] सम्यक् प्राप्नुवन्ति (विश्वे) सर्वे [अजस्य] अनुत्पन्नस्या नादे र्जीवस्या व्यक्तस्य च [नाभौ] मध्ये (अधि) अधिष्ठातृत्वेन सर्वोपरि विराजमानम् (एकम्) अद्वितीयम् स्वयं सिद्धम् [अर्पितम्] प्रापितम् स्थितम् (यस्मिन्) (विश्वानि) अखिलानि (भुवनानि) लोकजातान्यधि करणानि (तस्थुः) तिष्ठान्ति ॥ ३० ॥

भाषार्थ–हे मनुष्यो [यत्र] जिस ब्रह्म में (आपः) कारण मात्र प्राण वा जीव (प्रथमम्) बिस्तार युक्त अनादि (गर्भम्) सर्वलोकों को उत्पत्ति का स्थान प्रकृति को (दध्रे) धारण करते हुए वा जिसमें (विश्वे) सब (देवाः) दिव्य आत्मा और अन्तःकरण युक्त योगीजन [संगच्छत] सम्यक प्राप्त होते हैं वा जो (अजस्य)

अनुत्पन्न अनादि जीव वा अव्यक्त कारण समूह के [नाभौ] मध्य में (अधि) अधिष्ठातृपन से सब के ऊपर विराजमान (एकम्) अद्वितीय स्वयं सिद्ध (अर्पितम्) स्थित (यस्मिन्) जिस में (विश्वानि) समस्त (भुवनानि) लोकोत्पन्न द्रव्य (तस्थुः) स्थिर होते हैं तुम लोग (तमित्) उसी को परमात्मा जानो ॥३०॥

नूनमस्ति नोश्वः कस्तद्वेद यदद्भुतम् । अन्यस्य चित्तमभि सञ्चरेण्यमुताधीतं विनश्यति ॥१०॥

ऋग्वेद मं०१ सू० १७० मं० १ ॥

भाष्यम्–(न) निषेधे (नूनम्) निश्चितम् (अस्ति) विद्यते (नो) (श्वः) आगामिदिने (कः) (तत्) (वेद) जानाति (यत्) (अद्भुतम्) आश्चर्य भूतमिव वर्तमानम् [अन्यस्य] (चित्तम्) अन्तःकरणस्य स्मरणात्मिकां वृत्तिम् (अभि) (सञ्चरेण्यम्) सम्यक् चरितुं ज्ञातुं योग्यम् (उत) अपि (आधीतम्) समन्ताद्धृतम् (वि) (नश्यति) अदृष्टं भवति ॥१०॥

भावार्थ–जो परमात्मा जीव रूप होकर उत्पन्न नहीं होता और न उत्पन्न होकर विनाश को प्राप्त होता है । नित्य आश्चर्य गुण कर्म स्वभाव वाला अनादि चेतन है उसका जानने वाला भी आश्चर्य रूप होता है ।१०।

३ २ ३ १ २ ३ १ २ ३ २ ३ १ २ ३ १ र

इत ऊती वो अजरं प्रहेतारमप्रहितम् । आशुं

२ र ३ १ २ ३ १ २ ३ १ र ३ १ २

जेतारᳪ हेतारᳪ रथीतममतूर्त्तं तुग्रियावृधम् ॥११

साम छन्द आ. अ. ३ द: ६ मं. १।

भाष्यम्—हे मनुष्याः! यूयम (वः) युष्माकम (ऊती) ऊत्यै रक्षायै (अजरम्) अकायत्वाऽजरारहितम् (प्रहेतारम) अन्तर्यामि तया सर्वस्य प्रेरकम् (अप्रहितम) कूटस्थत्वात्केनाऽपिचालयितुमशक्यम् (आशुम्) योऽश्नोति व्याप्नोतितम् (जेतारम्) योजयति सर्वोत्कृष्टत्वेन वर्ततेत म (हेतारम) सर्वगम् (रथीतमम्) रमणीयवत्तमम (अतूर्त्तम) निराकारत्वात्केनाऽपिहिंसितुम शक्यम् (तुग्रियावृधम्) उदकस्य वर्षकत्वेन वर्धकम् प्रकर्णादिन्द्रं परमेश्वरम् (इत) प्राप्नुत ॥

भाषार्थ—हे मनुष्यो। तुम (वः) अपनी (ऊती) रक्षा के लिये (अजरम) अकाय होने से बुढ़ापे से रहित (प्रहेतारम) अन्तर्यामि तथा सब के प्रेरक [अप्रहितम] कूटस्थ होने से अचल (आशुम) व्यापक (जेतारम) सर्वोत्कृष्ट [हेतारम] सर्वग (रथीतमम) अति रमणीय पदार्थों वाले [अतूर्त्तम] निराकार होने से अहिंसनीय अमर (तुग्रिया वृधम) जल वर्षाने वाले इन्द्र अर्थात् परमेश्वर को (इत) प्राप्त होओ ॥११॥

१ २ ३ १ २र २ र३ १ २ र

नकि इन्द्र त्वदुत्तरं न ज्यायो अस्ति वृत्रहन् ।

२ ३ २उ ३ २

नक्येव यथा त्वम् ॥१२॥

साम छं० अ० द० ६ मं० १० ॥ अ० २ ॥

भाष्यम्—(इन्द्र) परमैश्वर्यवन्! (त्वत्) त्वत्तः (उत्तरम) श्रेष्ठम (नकि) नैव किमपि (न) नैव [ज्यायः] महत् [अस्ति] (वृत्रहन्) मेघनाशक वदविद्या विनाशक (यथा) येन प्रकारेण (त्वम) असि तथा (नकि, एव) नैव कश्चिदुप करोति ॥१२॥

भाषार्थ—हे (इन्द्र) परमैश्वर्य वाले (त्वत) तुझ से [उत्तरम]

श्रेष्ठ [नकि] कुछ नहीं। (न) न तुझ से [ज्यायः] बड़ा [अस्ति] है मेघ विनाशक के समान अविद्यादि नाशक यथा जैसे कि (त्वम) तू (उपकार करता है वैसा) (नकि,एव) अन्य कोई नहीं है ॥१२॥ अर्थ पं० तुलसीराम कृत ॥ ऋग्वेद तु ४। ३०।१- नाकि रिन्द्र त्वदु-त्तरो न ज्यायां अस्ति वृत्रहन्। नाकि रेवा यथात्वम ॥ इति पाठः॥

यद् द्याव इन्द्र ते शतं शतं भूमी रुतस्यूः ॥ नत्वा वज्रिं त्सहस्रꣳसूर्या अनु न जातमष्ट रोदसी ॥१३॥

सा० अ० ३ द० ५ मं० ६॥

भाष्यम्–(इन्द्र) हे परमेश्वर ! (यत्) यदि (द्यावः) द्युलोकाः (शतम) वहवः (स्युः) भवेयुस्तदापि [ते] त्वाम (न अनु, अष्ट) नानु व्याप्नवन्ति (उत) च (भूमीः) भूमयः (शतम) वह्वयःस्युस्त-दापि न व्याप्नवान्ति। (वज्रिन) हे दुष्टेषु दण्ड प्रणेतः ! [सहस्रम] असंख्याताः (सूर्य्याः) आदित्य लोकाः (त्वा) त्वांनाऽनुव्याप्नुवन्ति (रोदसी) द्यावापृथिव्यौ नाऽनुव्याप्नुतः। (जातम) उत्पन्नं जगन् मात्रमपि [न] नैव त्वां व्याप्नोति ॥१३॥

भाषार्थ--[इन्द्र] हे परमेश्वर ! (यत्) यदि (द्यावः) द्युलोक (शतम) सैकड़ों (स्युः) हों। तौभी (ते) आपको (न) नहीं (अनु) साथ (अष्ट) व्याप सक्ते (उत) और (भूमीः) पृथिवीलोक (शतम) सैकड़ों हों तब भी नहीं व्यापसकते (वज्रिन) हे दुष्टों को दंड दाता ! (सहस्रम) असंख्यत् (सूर्याः) सूर्य्य लोक भी (त्वा) आपको नहीं व्याप सकते, (रोदसी) द्यावापृथिवी भी आपको नहीं व्याप सकते (जातम) उत्पन्न जगत् मात्र (न) आपको नहीं व्याप सकता॥ क्योंकि आप अनन्त और सब से बड़े हैं ॥१३॥

परमात्मा एकही है दूसरा नहीं अर्थात् एक से अधिक नहीं प्रमाण अथर्व वेद का० १३ अ० ४ मं० १६।१८।२०।२१। का देखो यथाः—

न द्वितीयो न तृतीयश्चतुर्थो नाप्युच्यते। न पञ्चमो न षष्ठः सप्तमो नाप्युच्यते॥ नाष्टमो न नवमो दशमो नाप्युच्यते॥ तमिदं निगतं सहः स एष एक एकवृदेक एव॥ सर्वे अस्मिन् देवा एकवृतो भवन्ति॥

भाषार्थ—परमेश्वर एकही है उससे भिन्न दूसरा तीसरा और चौथा और पांचवां न छटा न सतवां न आठवां न नवमां और न दशवां कोई ईश्वर है किन्तु वह सदा एक अद्वितीय ही है वही सदा सब जगत में परिपूर्ण होके पृथिव्यादि सब लोकों को रच के अपने सामर्थ से धारण कर रहा है, अपने काम में वह किसी की सहायता नहीं लेता उसी की शक्ति से वसु* आदि सब देव अर्थात् (पृथिव्यादि सब लोक) ठहर रहे हैं और प्रलय में भी उसकी शक्ति से लय होके उसी में बने रहते हैं॥

---

* अग्नि, पृथिवी, वायु, अन्तरिक्ष, आदित्य, आकाश, चन्द्रमा नक्षत्र, इनकी वसु संज्ञा इस लिये है कि (एतेहीदं सर्वं वासयन्ते तद्यदिदं सर्वं वासयन्ते तस्माद्वसव इति॥ श. ब्रा.) सब पदार्थ इन्हीं में बसते हैं और यही सब के बास करने के स्थान हैं॥

अत्रविषयेशास्त्र प्रमाणम् ॥

' तत्रादौ सांख्य शास्त्रस्योच्यते '

महर्षि कपिल भी परमात्मा को निराकार अवतारादि से रहित मानते हैं यथाः—

व्यावृतो भयरूपः॥ अ० १। सू० १६०॥

वह प्रभु उभय (दोनों वद्ध,मुक्त) रूपों से विलक्षण भिन्नस्वरूप है ॥ और

साक्षात्सम्बन्धात् साक्षित्वम् ॥ १। १६१॥

वह वद्ध, मुक्त, दोनो पुरुषों से साक्षात् व्याप्य व्यापक सम्बन्ध से केवल साक्षी है ॥ एवं ऋग्वेद १।१६४।२० ॥ में भी कहा किः-

द्वासुपर्णा सयुजासखाया समानं० इत्यादि ॥

दो चेतन स्वरूप साथी व्याप्य व्यापक सम्बन्ध युक्त परस्पर मित्र अनादित्व में समान वृक्ष छेद्य, भेद्य, परिणामी अव्यक्त प्रकृति के साथ लिपटे रहने वाले जीव, ईश्वर हैं उन दोनों में १ जीवात्मा प्रकृति रूपी वृक्ष के फल को खाता है और दूसरा परमात्मा अभोक्ता केवल साक्षी मात्र है ॥१६१ औरः-

नित्य मुक्तत्वम् । १।१६२॥

परमेश्वर को नित्य मुक्ति है, अन्य पुरुषों की मुक्ती तो समय

विशेष में होती है मुक्ति की प्राप्ति से पूर्व बन्ध कोटि में है परन्तु ईश्वर नित्य मुक्त है वह बद्ध से मुक्त नहीं हुआ है॥१६२। क्योंकि:-

औदासीन्यंचेति ॥ १॥१६३॥

उसकी उदासीनता ही नित्य मुक्तता का हेतु है क्योंकि उसको न राग है न द्वेष ॥१६३॥

और प्रत्यक्ष प्रमाण विषयक प्रश्न के उत्तर में आचार्य्य ने जो हेतु दिया है वह भी परमेश्वर के निराकारत्व को साबित करता है यथाः-

ईश्वरासिद्धेः ॥१॥९२॥

बद्ध मुक्त योरन्यतराऽभावान्न तत्सिद्धिः ॥

कोई मनुष्य यदि इन्द्रियों ही के सम्बन्ध से ज्ञान होने को प्रत्यक्ष माने तो उस को ईश्वर की भी सिद्धि नहीं माननी पड़ेगी क्योंकि वह बद्ध मुक्त दोनों से पृथक है, अर्थात् बद्ध ईश्वर की ईश्वरता सिद्ध नहीं हो सकती, मुक्त ईश्वर इन्द्रियों का विषय नहीं हो सकता अतएव उसमें प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं कह सकते। इससे यही मानना ठीक है कि योगियों को वाह्य इन्द्रिय सम्बन्ध बिना भी प्रत्यक्ष ज्ञान होता है ॥ औरः-

मुक्तात्मनः प्रशंसो पासासिद्धस्यवा ॥१॥९५॥

प्रमेय की सिद्धि प्रमाण से है अन्यथा नहीं यदि ईश्वर प्रत्यक्ष प्रमाण से योगियों को भी सिद्ध न हो तो उसकी उपासना व्यर्थ हो जावे। और यदि बद्ध हो तो उसकी प्रशंसा जो वेदादि शास्त्रों में कही है वह न बनसके, अतः यह प्रशंसा तो मुक्तात्मा ईश्वर की ही हो सकती है ॥१॥९५॥

॥ एवं योगशास्त्रे पतञ्जलि मुनिरप्याह ॥

क्लेशकर्म विपाकाशयैर परामृष्टः पुरुष विशेष ईश्वरः ॥प्र० पाद सू० २४॥

अविद्यादि क्लेश, शुभाशुभ कर्म, कर्म फल, और कर्मफलों की वासनाओं से भिन्न पुरुष विशेष ईश्वर है॥२४॥

तत्रनिरति शयंसर्वज्ञ बीजम् ॥ १।२५॥

उस ईश्वर में सर्वज्ञ होना ऐसा निमित्त है जो उससे अधिक किसी में नहीं है ॥२५॥

सएष पूर्वेषा मपि गुरुःकालेनाऽनवच्छेदात् ।

यह परमात्मा पूर्व ऋषि मुनियों का भी गुरू है क्योंकि काल से नहीं कटता अर्थात् कोई कहे कि महात्मा लोग भी सर्वज्ञ होते थे तोभी वह सदा न रहे, परन्तु ईश्वर कालाऽवच्छिन्न नहीं कि किसी काल में हो किसी में न हो अतएव ईश्वर ही सर्वज्ञ है ॥

टिप्पणी—अवतारादि जितने हुए हैं वे सब अल्पज्ञ हुए हैं जिस को पौराणिक जन मानते हैं। परमात्मा कभी अल्पज्ञ नहीं होता।

ईश्वर निराकार प्रकरणे उपनिषदां प्रमाणानि॥

" तत्रात्र केनोपनिषदः"

नतत्रचक्षुर्गच्छति नवाग्गच्छति नो मनो न वि-
द्मो न विजानीमो यथैतदनुशिष्यादन्यदेव त-
द्विदितादथो अविदिता दधि॥इति शुश्रुम पूर्वेषां
येनस्तद्व्याच चक्षिरे॥ प्र० खं० ३॥

अर्थ-(तत्र) उस परमेश्वर में (चक्षु र्नगच्छति) नेत्र नहीं जाता (वाक) वाणी जैसे कान में जाती है वैसे (नगच्छति) नहीं जाती (नोमनः) मन भी उस ब्रह्म में नहीं पहुंचता क्योंकि वह ईश्वर मन से भी अधिक गति वाला है तथा चक्षु आदि के उपलक्षण से उस को अन्य इन्द्रियादि भी नहीं प्राप्त कर सकते इसी से हम लोग (नविद्मः) उसको नहीं जानते (नविजानीमः) विशेष करके भी हम नहीं जान सकते (यथा) जैसे (एतत्) इस ब्रह्म का पुत्र वा शिष्य के लिये (अनुशिष्यात्) उपदेश करें, यथावत जाने हुए वस्तु का उपदेश करना बन सकता है कि अमुक पदार्थ का स्वरूप ऐसा है जब ईश्वर में इन्द्रियों की पहुंच नहीं हो सकती तो उसके स्वरूप का उपदेश कैसे किया जा सकता है (तत्) वह ब्रह्म (विदितात्) इन्द्रिय से जाने हुए विषय से (अन्यत्एव) भिन्न ही है (अथो) और (अविदितात) जो कभी नहीं जाना जाता उस अव्यक्त परमाणु से भी अति सूक्ष्म भिन्न है (इति) इस प्रकार (पूर्वेषाम्) पूर्वज आचार्यों के बचन हमने (शुश्रुमः) सुने हैं (ये) जो आचार्य्य गुरू लोग (नः) हमारे लिये (तत्) उस सनातन ब्रह्म का (व्याचक्षिरे) उपदेश करते आए हैं॥३॥

यद्वाचानभ्युदितंयेन वागभ्युद्यते। तदेव ब्रह्मत्वं विद्धिनेदं यदिद मुपासते ॥ ४॥२॥

अर्थ-(यत्) जो ब्रह्म (वाचा) वाणी से (अनभ्युदितम्) नहीं कहा जाता वा नहीं प्रकाशित होता (येन) जिससे (वाक) वाणी (अभ्युद्यते) प्रकाशित होती है (तदेव) उसी को (त्वम्) तू (ब्रह्म) (विद्धि) जान और मनुष्य लोग (यदिदम्) जिस वाणी से प्राप्त होने योग्य शब्दादि रूप कार्य्य को (उपासते) सेवन करते हैं [तदिदम्] वह ब्रह्म यह (न) नहीं है ॥४॥२॥

यन्मनसा न मनुते येनाहुमनो मतम् । तदेवब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिद मुपासते ॥ ५॥३॥

अर्थ-(यत्) जो ब्रह्म [मनसा] मन से नहीं जाना जाता किन्तु (येन्) जिस ईश्वर से (मनः) अन्तःकरण (मतम्) जाना गया व्यापक होने से जो अन्तःकरण में मिल रहा है ऐसा (आहुः) ब्रह्म वेत्ता महर्षि लोग कहते हैं [तदेव] उसी को (त्वम्) तू ब्रह्म(विद्धि) जान (तदिदम्) जो यह मन से जानने योग्य सुखादि है जिसको (उपासते) सर्व साधारण लोग सेवन करते हैं (इदम्) वह यह ब्रह्म [न] नहीं है ॥५॥३॥

यच्चक्षुषा न पश्यति येन चक्षूंषि पश्यति। तदेव ब्रह्मत्वं नेदं यदिद मुपासते ॥ ६॥४॥

अर्थ-(यत्) जो ब्रह्म (चक्षुषान) नेत्र से नहीं (पश्यति) देखता किन्तु [येन] जिस ब्रह्म की शक्ति से (चक्षूंषिपश्यति) चक्षु देखता

है (तदेव) उसी ब्रह्म को [त्वम्] तू (विद्धि) जान (यदिदम्) जिस इस नेत्र से देखने योग्य वस्तु का मनुष्य [उपासते] सेवन करते हैं वह (इदम्) यह ब्रह्म (न) नहीं है ॥६॥४॥

यच्छ्रोत्रेण न शृणोतियेन श्रोत्रमिदं श्रुतम्।
तदेव ब्रह्मत्वं विद्धि नेदं यदिद मुपासते ॥ ७॥५॥

अर्थ–(यत्) जो ब्रह्म (श्रोत्रेणन] कान से नहीं (श्रुतम्) सुना जाता या सुनता (येन) किन्तु जिसकी शक्ति से (श्रोत्रम्) कान [श्रुतम] सुनता है (तदेव) उसी को [त्वं] तू (ब्रह्म विद्धि) ब्रह्म जान (यदिदम्) जिस उस श्रोत्र इन्द्रिय के शब्दादि विषय का मनुष्य (उपासते) सेवन करते हैं [इदंन] वह ब्रह्म यह नहीं है ॥७॥५॥

यत्प्रणेन न प्राणीति येन प्राणः प्रणीयते। तदेव ब्रह्मत्वं विद्धि नेदं यदिद मुपासते॥ ८॥६॥

अर्थ–(यत्) जो ब्रह्म प्राण से श्वांस नहीं लेता किन्तु जिससे प्राण अपना कर्म करता है हे जीव तूं उसी को ब्रह्म जान जिस जीवन मरणान्तर्गत प्राण वायु का मनुष्य उपासना करते हैं वह ब्रह्म यह नहीं है ॥८॥६॥

केन उपनिषद में भी परमात्मा को निराकार ही बतलाया है।

अत्रेश्वरनिराकारत्वे यमाचार्य्येणाप्युक्तम् कठोपनिषदि ॥

महर्षि यमाचार्य्य जी ने भी नचिकेता को उपदेश करते समय परमेश्वर को निराकार ही बतलाया है साकार नहीं, यथाः-

सर्वेवेदा यत्पदमा मनन्तितपाꣳसि सर्वाणि च यद्वदन्ति ॥ यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्य्यं चरन्ति तत्ते पदꣳ संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत् ॥ अ० ॥१ वल्ली २।१५॥

अर्थ-जिस ओम् वाचक रूप ब्रह्म को सब ऋग्वेदादि चारों वेद मान करते हैं और सर्व तपोनुष्ठान भी जिस ब्रह्म की प्राप्ती के लिए किए जाते हैं और जिसकी इच्छा करते हुए विद्वान लोग ब्रह्मचर्य्यादि आश्रमों का धारण करते हैं उस ओम् पद रूप ब्रह्म को तुम्हारे लिए संक्षेप से कहता हूं ॥१॥

नजायते म्रियतेवाविपश्चिन्नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित्। अजोनित्यः शाश्वतोऽयम्पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥ १॥२ ।१८॥

अर्थ-यह विज्ञान स्वरूप परमात्मा न उत्पन्न होता न मरता है और न किसी कारण से उत्पन्न हुआ न इसके कोई पुत्रादि होता है इस कारण यह आत्मा अजन्मा नित्य सनातन सदा एक रस और शरीर में स्थित भी शरीर नाश होने पर नष्ट नहीं होता ॥२

अणोरणीयान् महतो महीयानात्मास्य जन्तो र्निहितो गुहायाम्। तमक्रतुः पश्यति वीत शोको धातुः प्रसादान् महिमानमात्मनः॥ ३॥ १।२।२०

अर्थ–यह ब्रह्म सूक्ष्म से भी अत्यन्त सूक्ष्म है और आकाशादि बड़े पदार्थों से भी अत्यन्त बड़ा है ऐसा परमेश्वर इस चेतन शरीर के बीच हृदय में स्थित है ऐसे ब्रह्म को फल भोग की आशा से कर्म न करता हुआ शोक रहित योगी पुरुष शुद्ध बुद्धि से आत्मा के महत्त्व को जानता है ॥३॥

अशब्दमस्पर्श मरूपमव्ययं तथारसं नित्य मगन्ध वच्चयत्। अनाद्यनन्तं महतः परंध्रुवं निचाय्य तंमृत्यु मुखात् प्रमुच्यते॥ ४॥१।३।१५॥

अर्थ–जो ब्रह्म शब्द का विषय नहीं, उससे भी विलक्षण स्पर्श व रूप रस से रहित है वह अविनाशी नित्य अनादि अनन्त महतत्व से भी अत्यन्त सूक्ष्म है उसको जानके जीवात्मा मृत्युरूपी दुःख से छूट जाता है ॥५॥

नाविरतो दुश्चरितान्ना शान्तो नासमाहितः। नाशान्तमानसो वापि प्रज्ञाने नैनमाप्नुयात्॥५॥

अर्थ–जो पुरुष दुष्कर्मों से विरक्त नहीं हुआ और जिसका चित्त विषयों में फसने से अशान्त है व जिसको किसी पर विश्वास नहीं तथा जिसका मन भी शान्त नहीं ऐसे पुरुषों को परमात्मा

नहीं प्राप्त होता ॥५॥

न संदृशे तिष्ठति रूप मस्य न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम् ॥ हृदा मनीषा मनासाभि क्लृप्तो यएनं विदुस्ते स्मृताभवन्ति ॥६॥

अर्थ–इस अचिन्त्य अव्यक्त परमेश्वर का सामने कोई रूप नहीं ठहरता इस ईश्वर के रूप को कोई नेत्र से नहीं देखता किन्तु हृदस्थ मन को संकल्प विकल्प रूप वृत्ति को दवाने वाले निश्चयात्मक बुद्धिरूप मनन सामर्थ्य से जाना जाता है जो जानते हैं वे मोक्ष पाते हैं ॥६॥

सूर्य्यो यथा सर्व लोकस्य चक्षु र्न लिप्यते चाक्षुषै र्वाह्यदोषैः । एकस्तथा सर्व भूतान्तरात्मा न लिप्यते लोक दुःखे न वाह्यः॥ ७॥ ॥२।५॥११॥

अर्थ–जैसे सब लोक को देखने का कारण सूर्य्य भ्रम से अन्य देखने वा मलिन देखने आदि सम्बन्धी दोषों से लिप्त नहीं होता वैसे ही सर्व प्राणियों का अन्तर्यामी परमात्मा एक, सर्व वस्तुओं में व्याप्त भी सांसारिक दुःखों से दुःखित नहीं होता॥७॥

हन्ताश्चे न्मन्यते हन्तुं हन्तश्चेत् मन्यते हतम् । उभौ तौ न विजानी तो नायंहन्ति नहन्यते ॥८।२।१९॥

अर्थ–मारने वाला अभिमानी पुरुष यदि आत्मा को मारसकता

है ऐसा मानता है और ताड़न किया प्राणी यदि आत्मा विनाश को प्राप्त हुआ ऐसा मानता है तो वे दोनों आत्मा के स्वरूप को नहीं जानते क्योंकि यह आत्मा न किसी से मारा जाता है और न किसी को मारता है ॥८॥

अशरीरं शरीरे ष्वन व स्थेष्व वस्थितम्। महांतंविभु मात्मानं मत्वा धीरो न शोचति ॥६॥१।२।२२॥

अर्थ—जिस की स्थिरता नहीं ऐसे मनुष्यादि प्राणियों के नाशवान शरीरों में लिंग शरीरादि के बिनाही अचल स्थित रहता है उस सब से बड़े अनन्त व्यापक परमात्मा को जान कर विद्वान पुरुष शोक नहीं करते ॥६

ऋतं पिवन्तौ सुकृतस्य लोके गुहां प्रविष्टौपरमे-परार्द्धे। छाया तपो ब्रम्ह विदो वदन्ति पंचाग्नयो येच त्रिणाचि केताः ॥१०॥ ॥१।३।१॥

अर्थ—इस शरीर में जीव ब्रह्म दो आत्मा विद्यमान हैं उस में जीवात्मा पुराय पाप के फल को भोगता है परमात्मा भुगाता है भोगता नहीं ऐसा विद्वान जन कहते हैं॥

इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः ॥
मनसस्तु परा बुद्धि बुद्धे रात्मा महान् परः ॥११॥
महतः पर मव्यक्तमव्यक्ता त्पुरुषः परः ॥
पुरुषान्नपरं किंचित् साकाष्ठा सापरागतिः॥१२॥

अर्थ—इन्द्रियों से परे विषयादि अति सूक्ष्म हैं और विषयों से परे मन अति सूक्ष्म है तथा मन से सूक्ष्म बुद्धि और बुद्धि से सूक्ष्म महत्तत्व है ॥११॥

अर्थ—महत्तत्व से परे प्रकृति [जगत का कारण है] और अव्यक्त प्रकृति से परे अत्यन्त सूक्ष्म परमात्मा है और परमात्मा से परे सूक्ष्म कोई नहीं है किन्तु वही स्थित परागति है इस से सूक्ष्म किसी की गति नहीं है ॥१२॥

एषसर्वेषु भूतेषु गुढोत्मा न प्रकाशयते ॥
दृश्यते त्वग्रया बुद्धया सूक्ष्मया सूक्ष्म दर्शिभिः ॥१३॥

अर्थ—यह सर्व प्राणियों से गुप्त परमात्मा विषयासक्त इन्द्रियों के साथ फंसी हुई बुद्धि से प्राप्त नहीं होता किन्तु सूक्ष्म से शुद्ध बुद्धि करके सूक्ष्म दर्शी जनों से देखा जाता है ॥१३॥

तदेतदिति मन्यन्तेऽनिर्दिश्यं परमं सुखम् ॥
कथंनु तद्विजानीयां किमुभाति विभाति वा ॥१४॥

अर्थ—नचिकेता पुनः प्रश्न करता है कि वह ब्रह्म यह है ऐसा अनिर्दिश्य अंगुली उठाकर जिसका बताना नहीं हो सकता ऐसे सुख स्वरूप ब्रह्म को आप विद्वान मानते हैं क्या वह ब्रह्म प्रकाश का हेतु होता है या स्वयं प्रकाशक है यह मैं कैसे जानूं सो कहिये ॥१४॥

(अब यमाचार्य्य जी उत्तर देते है यथाः—)

नतत्र सूर्य्यो भाति न चन्द्र तारकं नेमा विद्युतो-
भान्ति कुतोऽयमग्निः। तमेवभान्तमनु भाति सर्व
मृतस्य भाषा सर्व मिदं विभाति ॥१५॥

अर्थ—हे सौम्य उस ब्रह्म में सूर्य्य चन्द्रमा व तारे प्रकाश नहीं करते तथा प्रत्यक्ष चमकने वाली बिजुली भी प्रकाश नहीं करती किन्तु उसके ही प्रकाशमान हुए से उसके प्रकाश से यह सूर्य्य चन्द्रमादि सब पदार्थ प्रकाशित हैं ॥१५॥

इससे भी सिद्ध हुआ कि परमात्मा सूर्य्यादि से अधिक शक्ति मान् होता हुआ भी इन सबों से पृथक इनके समान (साकार) नहीं है। इसका पोषक यजु० अ० ३२ में मंत्र १।२।३। है ॥

नित्योऽनित्यानां चेतनश्चेतनानामेकोवहूनां यो वि-
दधाति कामान्। तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरा-
स्तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम्॥१६॥ कठ ५।१३॥

अर्थ—परमात्मा नित्यता चैतन्यता और एकता में सब से अद्वितीय है और सबको यथा योग्य फल दाता है सब के जीवों का साक्षी और अन्तरयामी है जो बुद्धिमान ऐसे परमात्मा को ज्ञान के नेत्रों से देखते हैं वही सदा की शान्ति पाते हैं और किसी को शान्ति नहीं होती ॥१६॥

॥एवमुक्तञ्च माण्डुक्योपनिषदि ॥

अदृष्ट मव्यवहार्य्यं मग्राह्य मलक्षण माचिन्त्य मव्यपदेश्यमेकात्म प्रत्यय सारं प्रपंचोप शमं शान्तं शिवमद्वैतंचतुर्थं मन्यन्ते स आत्म स विज्ञेयः॥ १॥

अर्थ–वह परमात्मा देखने व्यवहार ग्रहण और स्मरण करने योग्य नहीं तथा किसी प्रकार का चिन्ह वाला नहीं वह अव्यपदेश्य अव्याभिचारि व्यक्त शान्त कल्याण युक्त अद्वितीय चौथी अवस्था को प्राप्त ब्रह्म है और वह सब का स्वामी है ऐसा विद्वान मानते हैं अतः उसको विशेष प्रयत्न से जानना चाहिये ॥१॥

॥ अत्रविषये तैतिरीयोपनिषद्यप्युक्तम् ॥

यतो वाचो निवर्त्तन्ते। अप्राप्य मनसा सह॥
आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्। नबिभेति कदाच नेति॥
तस्यैष एव शरीर आत्मा यः पूर्वस्य। तस्माद्वा-
एतस्मान्मनो मयात्। अन्योऽन्तर आत्मा विज्ञान
मयः। तेनैष पूर्णः। स वा एष पुरुषविधएव।
तस्य पुरुष विधताम्। अन्वयं पुरुष विधः। तस्य

श्रद्धैव शिरः। ऋतं दक्षिण पक्षः। सत्यमुत्तर पक्षः। योग आत्मा महः पुच्छं प्रतिष्ठा ॥१॥ ब्र. व. अनु० ४ पं० भीमसेन कृत

अर्थ—जिस विज्ञान स्वरूप परब्रह्म परमात्मा को न प्राप्त होके मन के सहित वाणी जिससे इधर ही पहुंचकर हट जाती हैं उसी ब्रह्म के आनन्द स्वरूप को विद्वान पुरुष प्राप्त होके मरण आदि के क्लेश से नहीं डरता। उस पूर्वोक्त मनोमय आत्मा का जो यह शरीर में व्याप्त परमेश्वर है वही अन्तर्यामी है। उस पूर्वोक्त इस मनो मय आत्मा से भिन्न विज्ञान स्वरूप आत्मा है। उस मनोमय आत्मा के साथ यह विज्ञानमय आत्मा व्याप्त है। वह विज्ञान मय आत्मा भी शरीर के जैसे अवयवों वाला है उस मनोमय की पुरुषाकृति के अनुकूल यह विज्ञान मय आत्मा भी शरीर के तुल्य है उस आत्मा का श्रद्धा ही शिर है। शास्त्राज्ञानुसार आचरण करना ही दहिना भाग और मन के अनुकूल वाणी का व्यापार करना चाहिए ऐसी वृत्ति विज्ञानमय का उत्तर भाग है। निःसन्देह रूप वृत्ति होना मध्यम भाग है। महत्तत्त्व विज्ञानमय आत्मा का पुच्छ भाग है ॥१॥

सत्यं ज्ञान मनन्तं ब्रह्म। यो वेदनिहितं गुहायाम् परमे व्योमन्। सोऽश्नुते सर्वान् कामान्। सह-ब्रह्मणा विपश्चितेति ॥॥२॥ ब्र. व. अ० १ ॥१॥

अर्थ—वह परमात्मा (सत्यं) जो अपने स्वरूप से च्युत व चलायमान नहीं होता जिसमें किसी प्रकार विकार वा स्वरूप भेद नहीं पड़ता जो (ज्ञानम्) ज्ञान स्वरूप है जड़ वस्तु का मेल जिस में नहीं, (अनन्तम्) जिसकी सीमा अवधि (हद) नहीं हो सकी

वह (ब्रह्म) है। उस उत्तम शुद्ध हृदय रूप आकाश में स्थित् ब्रह्म को जो मनुष्य जानता है वह विद्वान मेधावी सर्वज्ञ ब्रह्म के साथ सब अभीष्ट भोग वा सुख के अनुभवों को प्राप्त होता है ॥२॥

भृगु ऋषि ब्रह्म जानने के लिए अपने पिता वरुण के पास गये और जाकर बोले कि हे भगवन् मुझे ब्रह्म का ज्ञान कराइये उत्तर में वरुण ने कहा कि (अन्न) प्राण, चक्षु, श्रोत्र, मन, वाणी ये सब ब्रह्म हैं तुम तप से जानो आदि। उन भृगु ने तप करके अन्त को प्रथम ब्रह्म निश्चित किया और अपने निश्चित् विचार को निश्चय कराने के लिए पुनः पिता के पास गये और पूछा कि भगवन् ब्रह्म जानते हो तो बताइये। पिता ने उत्तर दिया (तपसा ब्रह्मविजिज्ञासस्व) तप से ब्रह्म को जानो वह पुनः तप करने गया और तप करके वह प्राण, चक्षु श्रोत्र, मन, वाणी आदि को ब्रह्म जानता हुआ निश्चयार्थ पिता के पास आया। पुनः उत्तर पाकर तप करने को गया और अन्त में जाना कि आनन्द मय ही ब्रह्म है और सन्देह दूर करणार्थ पिता के पास गया, जाकर बोला कि भगवन् आनन्द ही को ब्रह्म जाना क्योंकि आनन्द से सब प्राणी उत्पन्न होते हैं और उत्पन्न हुए प्राणी आनन्द के आश्रय से जीते हैं आनन्द स्वरूप में ही सब लीन हो जाते हैं वही आनन्द स्वरूप ब्रह्म है और वही सब की अन्तिम सीमा है यह सुनकर वरुण ने अनुभव किया और भृगु ने कहा। यथाः—

आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्। आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। आनन्देन जातानि जीवन्ति आनन्दं प्रयन्त्यभि संविशन्तीति ॥ सैषा भार्गवी वारुणी विद्या परमेव्योमन् प्रतिष्ठिता य एवं वेद प्रतितिष्ठति०॥ इत्यादि भृ॰ व॰ अ॰ ६॥

इस उपनिषद में भी परमात्मा का निराकारत्व ही वर्णन किया है साकार नहीं.भृगुवल्ली पूर्ण उद्धृत न किया पुस्तक बढ़ जाने के भय से, किन्तु भावार्थ सब लिख दिया है इतने ही से सज्जन जन समझ लें।

एवं परमेश्वरस्य निराकारत्वं याज्ञवल्क्य मुनिनापि प्रतिपादितं गार्गी म्प्रति बृहदारण्यकोपनिषदि।

सहोवाचे तद्वैतदक्षरं गार्गि ब्राह्मणा अभिवदन्त्य स्थूल मनण्वह्रस्व मदीर्घ मलोहित मस्नेहमच्छा-मतमोऽवाय्वनाकाश मसंग मरसमगन्ध मचक्षुष्क मश्रोत्र मवा गमनोऽतेजस्कमप्राणमसुख ममात्र मनन्तर मबाह्यं नतदश्नाति किंचिन नतदश्नाति कश्चन ॥ अ० २ ब्रा० ८॥१॥

अर्थ–याज्ञवल्क्य कहते हैं हे गार्गी! वह ब्रह्म, नाश, स्थूल, सूक्ष्म, लघु, लाल, चिक्कन, छाया, अन्धकार, वायु, आकाश, संग, शब्द स्पर्श, गन्ध, रस, नेत्र, कर्ण, वाणी, मन, तेज प्राण, मुख, भीतर, बाहर, इत्यादि प्राकृतिक गुण अवगुणों से पृथक न नापने योग्य, नवह किसी का आहार है और न उसको कोई खा सक्ता है॥ यही आशय शतपथ ब्राह्मण का है। श० का १४ अ० ६॥ कं. ८॥

एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि सूर्याचन्द्रमसौ

विधृतौ तिष्ठत। एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि द्यावापृथिव्यौ विधृते तिष्ठतः। एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि निमेषा मुहूर्त्ता अहोरात्राण्यर्द्ध मासा मासा ऋतवः संवत्सरा इति विधृतास्तिष्ठन्त्ये तस्यवा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि प्राच्योऽन्यानद्यः स्यन्दन्ते श्वेतेभ्यः पर्वतेभ्यः प्रतीच्योऽन्यायां याञ्च दशमन्वेति॥ बृहदारण्यके ॥५॥८॥९॥२॥

अर्थ—उसी अविनाशी पुरुष के शासन से हे गार्गि सूर्य्य चन्द्र धारे हुये स्थित है, उसी अक्षर पुरुष के प्रशासन से द्योलोक और पृथ्वीलोक धारे हुए स्थित है, उस नाश रहित के शासन से निमेष, मुहूर्त्त, दिन रात, पक्ष, मास, ऋतु, सम्वतसर, धारे हुए स्थित हैं, उसी परमेश्वर से हे गार्गि, कितने ही पूर्व्ववाहिनो नदियां स्वेत पर्व्वतों से निकल कर बहती हैं और कितनीही पश्चिम वाहिनी नदियां जिन्हें जिस दिशा में लगाता है॥२॥

यः पृथिव्यां तिष्ठन् पृथिव्या अन्तरो यं पृथिवी नवेद यस्य पृथिवी शरीरं यः पृथिवीमन्तरो यम-यत्येष त आत्माऽन्तर्य्याम्यमृतः बृह० ४।७॥३॥

अर्थ—जो पृथिवी में स्थित होकर पृथिवी से निराला है जिसे पृथिवी नहीं जानती, पृथिवी जिसका शरीर है, जो जो अन्तर वर्तिईं पृथिवी को नियमों में रखा है वही अमृत स्वरूप परमात्मा

तेरा भी अन्तर्यामी है, जो जल, अग्नि, अन्तरिक्ष वायु द्योलोक आदित्य दिशा, चन्द्र, तारा, आकाश, अन्धकार तेज और सब भूतों में स्थित होकर सब से निराला जिसे यह सब नहीं जानते सब भूत जिसके शरीर हैं, जो सब भूतों का अन्तरवर्त्ती और नियामक है, वही अमृत रूप परमात्मा तेरा भी अन्तर्यामी है ॥३॥

यंआत्मनितिष्ठन्नात्मनोन्तरोयमात्मा न वेद यस्यात्मा शरीरम। आत्मनोन्तरो यमयति सतआत्मान्तर्यामयमृतः ॥ बृहदारण्यके ॥ ४॥

अर्थ—जो परमेश्वर जीव में स्थिर और जीवात्मा से भिन्न है जिसको मूढ़ जीवात्मा नहीं जानता कि वह परमात्मा मेरे में व्यापक है जिस परमेश्वर का जीवात्मा शरीर है अर्थात जैसे शरीर में जीव रहता है वैसेही जीव में परमेश्वर व्यापक है जीवात्मा से भिन्न रहकर जीव के पाप पुण्यों का शाक्षी होकर उनके फल जीवों को देकर नियम में रखता है वही अविनाशी स्वरूप तेरा भी अन्तर्यामी आत्मा अर्थात तेरे भीतर व्यापक है ॥४॥

अत्र प्रकरणे मुण्डकस्यापि प्रमाणम्।

यत्तदद्रेश्य मग्राह्य मगोत्र मवर्ण मचक्षुः श्रोत्रं तदपाणि पादं नित्यंविभुं सर्व गतं सुसूक्ष्मं तद व्ययं तद्भूत योनिं परिपश्यन्तिधीराः ॥१॥

अर्थ—वह जो परब्रह्म परमात्मा अदृश्य, अग्राह्य, वंशरहित वर्ण, चक्षु, श्रोत्र हस्त, पादादि रहित नित्य विभु सर्व व्यापी अतिशय सूक्ष्म अव्यय है जो सब भूतों का कारण है उसे धीर विद्वान् पुरुष देखते (जानते हैं) ॥१॥

दिव्योह्यमूर्त्तः सवाह्याभ्यन्तरो ह्यजः। अप्राणो ह्यमनाः शुभ्रोह्यक्षरतात् परतः परः ॥ २॥

अर्थ—वह प्रभु मूर्ति वर्जित दिव्य बाहर भीतर अजन्मा अवतार रहित और प्राण मन रहित शुद्ध है तथा प्रकृति और जीव से परे है ॥२॥

हिरण्मये परे कोशे विरजं ब्रह्मनिष्कलम्।
तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिःतद्यात्मविदोविदुः ॥३॥

अर्थ—बाहरी वस्तु की अपेक्षा शरीर के भीतर ज्ञान प्रकाश स्वरूप हृदय के अवकाश में जो अविद्यादि दोषों से रहित निष्कल

ब्रह्म है वह शुद्ध ज्योतियों का ज्योति है ऐसा ब्रह्मवेत्ता लोग जानते हैं ॥३॥

नचक्षुषा गृह्यते नापि वाचा नान्यैर्देवैस्तपसा कर्मणा वा। ज्ञान प्रसादेन विशुद्ध सत्वस्ततस्तुतं पश्यते निष्कलं ध्यायमानः ॥ ४॥

अर्थ—वह परमात्मा नेत्र वाणी कर्म तथा तप व अन्य इन्द्रियों से ग्रहण नहीं होसकता किन्तु ज्ञान से शुद्ध चित्त वाला अन्तःकरण से योगी पुरुष तब निराकार ब्रह्म को ध्यान करता हुआ साक्षात् जान लेता है ॥४॥

बृहच्च तद्दिव्य मचिन्त्य रूपं सूक्ष्माच्च सूक्ष्मतरं विभाति। दूरात्सु दूरे तदि हान्ति के च पश्यत्स्विहैव निहितं गुहायाम् ॥५॥

अर्थ—वह परमात्मा चिन्ता करने योग्य नहीं है और सूक्ष्म से अत्यन्त सूक्ष्म दूर से दूर स्वयं प्रकाश स्वरूप इन्द्रियों से परे हृदय में भी है और आकाशादि से बड़ा होने पर भी योगियों के शरीरस्थ बुद्धि में स्थित हुआ प्रकाशित होता है ॥५॥

नतत्र सूर्य्योभाति न चन्द्र तारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः। तमेवभान्त मनु भाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥ ६॥

अर्थ कठोपनिषद् के प्रमाण में किया गया है पृष्ट २८ में देखो।

द्वासुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते। तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्य नश्नन्नन्यो अभिचाकशीति॥ ७॥ मु. ३ खं. १ मं. १॥

अर्थ—प्रकृति रूपी वृक्ष पर जीवात्मा परमात्मा रूपी पक्षी दोनों एक समान सब ओर से बैठे हुए हैं उन दोनों में से जीवात्मा अपनी इच्छा से स्वादिष्ट फलों को खाता है परमात्मा नहीं खाता किन्तु शुभाशुभ कर्मों को देखता है॥ इस मंत्र में रूपकालंकार से वर्णन है॥७॥

सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्॥ अन्तः शरीरे ज्योतिर्मयोहि शुभ्रोयं पश्यन्ति यतयः क्षीणदोषाः॥८॥मुं.३ख. १ मं. ५॥

अर्थ—(अन्तःशरीरे) शरीर के भीतर (ज्योतिर्मयः) स्वयं प्रकाशमान (शुभ्रः) शुद्ध (एषः,आत्मा) यह आत्मा (हि) निश्चय (सत्येन) मन, बचन और कर्म की अभिन्नता से (तपसा) इन्द्रिय और मनकी एकाग्रता से (सम्यग, ज्ञानेन) यथार्थ ज्ञान से (ब्रह्मचर्येण) ब्रह्मचर्य के पालन करने से (नित्यम्) सर्वदा (लभ्यः) प्राप्त होने योग्य है। (यम्) जिसको (क्षीणदोषाः, यतयः) जिन के अविद्यादि दोष नष्ट होगये हैं ऐसे यत्नशील योगी (पश्यन्ति) देखते हैं॥८॥

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्व संशयाः॥ क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे॥९॥ मुं. २ ख. २।८

अर्थ-(तस्मिन्, परावरे) उस सूक्ष्म से सूक्ष्म और महान से महान ब्रह्म के (दृष्टे) जान लेने पर (हृदय, ग्रन्थिः) वासनामय अविद्या की गांठ (भिद्यते) टूट जाती हैं (सर्व संशयाः) अज्ञान से उत्पन्न सारे संशय (छिद्यन्त) नष्ट हो जाते हैं (च) और (अस्य) इस विच्छिन्न संशय के (कर्माणि) प्रारब्ध, संचित और क्रियमाण रूप से तीनों प्रकार के कर्म (क्षीयन्ते) क्षीण हो जाते हैं ॥९॥

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो नमेधया नवहुना श्रुतेन । यमैवैष वृणुते तेन लभ्य स्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनुं स्वाम् ॥१०॥ ३।२।३।

अर्थ--परमेश्वर अधिक बोलने और मेधा तथा बहुत कथादि (कथक्कड़ों) के सुनने से नहीं प्राप्त होता किन्तु हृदय से जबकि चिन्तन किया जाता है तो वह परमात्मा अपने आप प्रत्यक्ष होता है ॥१०॥

ईश्वर निराकार निरूपणे श्वेताश्वतरोपनिषद् !

ईश्वर निराकार निरूपण में अब श्वेता श्वतरोपनिषद का प्रमाण लिखा जाता है ।

सर्वेन्द्रिय गुणा भास सर्वेन्द्रिय विवर्जित्तम् ।
सर्वस्य प्रभु मीशानं सर्वस्य शरणं वृहत् ॥३॥१७॥१॥

अर्थ—वह प्रभु सर्व इन्द्रियों के विषयों का प्रकाशक है परन्तु सर्व इन्द्रियों से वर्जित सबका पालन करने वाला व सब का स्वामी है और सबका शरण तथा महान् है ॥१॥

न तस्य कार्य्यं करणं च विद्यते । न तत्समश्चा भ्यदिकश्चदृश्यते । परास्यशक्ति र्विविधैव श्रूयते । स्वभावकी ज्ञानबल क्रियाच ॥२॥ अ० ६।८॥

अर्थ—न उसके शरीर है न इन्द्रिय न उसके समान और न उससे अधिक कोई दिखलाई देता है उसकी शक्ति परा और नाना प्रकार की सुनी जाती है और उसका ज्ञान क्रिया बल स्वाभाविक ही है ॥२॥

न तस्य कश्चि त्पतिरस्ति लोके न चेशिता नैव च तस्य लिङ्गम् । सकारणं करणाधिपाधिपो न चास्य कश्चिज्जनिता न चाधिपः ॥३॥ अ० ६। ९॥

अर्थ—संसार में उसका कोई पति नहीं और न कोई उसका नियन्ता है न शरीरादि उसका कोई चिन्ह है वह सबका कारण और कारणाधिप जीव का स्वामी है और न उसका कोई उत्पत्ति कर्त्ता न कोई उसका स्वामी है ॥३॥

एको देवः सर्वभूतेषु गूढःसर्व व्यापी सर्व भूतान्त रात्मा । कर्माध्यक्षः सर्व भूतादि वासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च ॥४॥ अ० ६। ११॥

अर्थ—वह सर्व का नियन्ता दिव्य गुण युक्त परमात्मा एकला ही सर्व भूतों में छिपा सर्व व्यापी सर्व प्राणियों का अन्तर्यामी कर्म का फल देना व सर्व प्राणियों में अधिकारी होके बसने वाला सबका साक्षी और वह केवल निर्गुण है ॥४॥

एको वशी निष्क्रियाणां बहूनामेकं बीजं बहुधा करोतियः । तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम् ॥५॥ अ० ६।१२॥

अर्थ—जो वश में करने वाला अकेला ही बहुत से जड़ पदार्थों के एक बीज को अनेक प्रकार से रचता है उस आत्मा में स्थिर को जो धीर पुरुष देखते जानते हैं। उन्हीं को निरन्तर सुख होता है, अन्य को नहीं ।५।

अणोरणीयान् महतो महीया नात्मा गुहायां निहितोऽस्यजन्तोः । तमक्रतुःपश्यति वीत शोको

धातु प्रसादान् महिमान मीशम् ॥६॥ अ० ३ श्लोक ॥२०॥

अर्थ—वह परमात्मा सूक्ष्म से अति सूक्ष्म बड़े से महान् बड़ा ईश्वर इस प्राणी के हृदय में स्थित है उस कर्म रहित बड़े स्वामी को विशोक पुरुष उसी की कृपा से देखता वा जानता है ॥६॥

अपाणि पादो जवनो ग्रहीता पश्यत्य चक्षुःसशृणो-त्यकर्णः। स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता तमाहु रग्र्यं पुरुषं महान्तम् ॥७॥ अ० ३। १९

अर्थ—वह प्रभु हाथ पाव से रहित है परन्तु हाथ पाव का काम करता है वह कान चक्षु से भी रहित है परन्तु सुनता व देखता है और मन न होते हुए भी ज्ञातव्य विषयों को जानता है उसको महान् मुख्य पुरुष कहते हैं ॥७॥

नैन मूर्ध्वं न तिर्यञ्च नमध्ये परि जग्रभत् ॥
न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः॥८॥
अ० ४। ॥१६॥

अर्थ—उस परमात्मा को ऊपर से वा नीचे या मध्य में कोई पकड़ नहीं सकता क्योंकि उसकी प्रतिमा (मूर्ति) नहीं है कि जिसका बड़ा यश [नाम] प्रसिद्ध है ॥८॥

न संदृशे तिष्ठति रूप मस्य न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम्। हृदा हृदिस्थं मनसा य एनमेवं विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥ ६ ॥ अ० ६।२०॥

अर्थ—उस परमात्मा का स्वरूप नेत्र के सामने नहीं ठहरता इसी लिए इसको कोई जन चक्षु से नहीं देखते किन्तु जो लोग इस हृदस्थ प्रभु को हृदय में मनन शक्ति से जानते हैं वे लोग अमर हो जाते हैं ॥६॥

यस्मात्परं नापर मस्ति किंचित् यस्मान्नाणी यो न ज्यायोऽस्तिकश्चित्। वृक्ष इव स्तब्धो दिवितिष्ठ त्येकस्ते नेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम् ॥१०॥ अ० ३।६॥

अर्थ—जिससे अधिक दूर समीप कुछ नहीं है जिससे अति सूक्ष्म बड़ा भी कोई नहीं है आकाश में वृक्ष सा निश्चल स्थिर है उसी एकले ही पुरुष से यह सब पूर्ण है ॥१०॥

वेदाह मेत मजरं पुराणं सर्वात्मनं सर्व गतं विभूत्वात्। जन्म निरोधं प्रवदन्ति यस्य ब्रह्म वादिनो प्रवदन्ति नित्यम् ॥११॥ अ० ३।२१॥

अर्थ—मुक्तात्मा पुरुष परमात्मा की स्तुति करके उपसंहार में कहता है कि मैं उस अजर सनातन सब के भीतर रहने वाले व्यापक होने से जिसको सर्वत्र उपस्थित कहते हैं उसको जानता हूं जिसको ब्रह्म बादी जन निश्चय करके अजन्मा नित्य कहते हैं ॥११॥

अनाद्य नन्तं कलिलस्य मध्ये विश्वस्य स्रष्टा रम नेकरूपम्। विश्वस्यैकं परिवेष्टि तारं ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्व पाशैः॥१२॥ अ० ४।१३॥

अर्थ—उस आदि अन्त से रहित कलिल के बीच में जगत के रचने वाले विविध सृष्टि के कर्त्ता सब के लपेटने वाले एकही देव को जानकर प्राणी बन्धन से छूट जाते हैं ॥१२॥

तिलेषु तैलं दधिनीव सर्पिरापः स्रोतस्स्वरणीषु चाग्निः। एवमात्माऽत्मनि गृह्यतेऽसौ सत्येनैनं तपसा योऽनुपश्यति ॥१३॥ अ० १।१५॥

अर्थ—जिस प्रकार तिलों में तेल है, दही में घी, सोतों में जल, अरणि में अग्नि है परन्तु विना यथार्थ साधन के प्रत्यक्ष नहीं होता। एवं इस व्यापक तथा निराकार परमात्मा को भी आत्मा में सत्य और तप से प्राप्त करसकते हैं ॥१३॥

विश्वतश्चक्षु रुत विश्वतो मुखो विश्वतो बाहुरुत विश्वतस्पात्। सं बाहुभ्यां धमति सं पतत्रैर्द्यावा भूमी जनयन् देव एकः॥१४॥ अ० ३।३॥

अर्थ पृष्ठ ६ में देखिये।

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते ॥ तयो रन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो ऽअभिचाकशीति ॥१५॥ अ० ४।६॥

अर्थ पृष्ट ३७ के ७ श्लोक के समान जानना ॥

ततः परंब्रह्म परं बृहन्तं यथा निकायं सर्व्व भूतेषु

गूढम्। विश्वस्यैकं परिवेष्टितारमीशं तं ज्ञात्वाऽमृता भवन्ति ॥१६॥ अ० ३॥७॥

अर्थ—उस सृष्टि से परे पारब्रह्म परमेश्वर को जो प्रति शरीर में और सब भूतों में गूढ़ रूप से वर्तमान है जो अकेला सारे विश्व का व्यापक है उसी को जान मनुष्य अमृत होते हैं ।१६॥

ततो यदुत्तरतरं तदरूपमनामयं यएतद्विदुर। मृतास्ते भवन्त्यथेतरे दुःखमेवापियन्ति ॥१७॥
अ० ३॥१०॥

अर्थ—जो उस जगत से उत्तरतर है वह परमेश्वर अरूप और अनामय है जो उसे जानते हैं वह मुक्त होते हैं और अज्ञानी जड़ मूर्ति पूजक दुःख के ही भागी होते हैं ।१७॥

महान् प्रभुर्वै पुरुषः सत्त्वस्यैष प्रवर्त्तकः। सुनिर्मलामिमां प्राप्तिमीशानोज्योतिरव्ययः॥१८॥
अ० ३॥१२॥

अर्थ—वह परिपूर्ण महान् प्रभु है और सुनिर्मल परमपद प्राप्ति के लिए धर्म का प्रवर्त्तक है और ईशान तथा अव्यय और प्रकाशमय है ॥१८॥

ईश्वरावतारनिषेधे श्री कृष्ण योगीश्वरेणाप्युक्तमर्जुनम्प्रति तद्यथा ॥

साम्प्रति में अविद्यावश स्वार्थी जन वैदिक सिद्धान्त विरुद्ध विषयों को भी वेदानुसार ही सिद्ध करणार्थ उद्योग कर रहे हैं जिस से आर्य्यावर्तीय साधारण जन स्ववेद धर्म का परित्याग कर असत् पाखंड मत का आश्रय ले रहे हैं तथा अवतारादि के मानने वाले अपने असत् सिद्धान्त को विशेष करके (यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानि र्भवति भारत। अभ्युत्थान मधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥) इस भगवत गीता के श्लोक से भी सिद्ध करते हैं कि परमात्मा ने कृष्णावतार धारण किया था आदि। अतः अब भगवतगीता से ही परमात्मा का निराकारपन, अवतारादि रहित निरूपण किया जाता है जो लोग श्री कृष्ण जी को परमेश्वरावतार मानते हैं वे गीता के निम्न लिखित् श्लोकों पर ध्यान देवें जिसमें श्री कृष्ण जी महाराज ने अर्जुन को परमेश्वर विषय में स्वयं उपदेश किया है यथाः-

ईश्वरः सर्व भूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन् सर्व भूतानि यन्त्रारूढानि मायया ॥१॥

तमेव शरणं गच्छ सर्व भावेन भारत। तत्प्रसादात् परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम् ॥२॥

इतिते ज्ञान माख्यातं गुह्याद्गुह्य तरं मया। विमृ-

श्य तद शेषेण यथेच्छसि तथा कुरु ॥३॥

भ० गो०अ० १८। श्लोक ६१।६२।६३॥

अर्थ—हे अर्जुन सर्व का नियन्ता परमेश्वर सब भूतों के हृदय में स्थित है और सर्व भूतों को माया से शरीररूपी यन्त्र में भ्रमण कराता है ॥१॥

हे भारत सर्व प्रकार से उस परमात्मा के शरण तूं प्राप्त हो उसकी कृपा से परम शाश्वत् मोक्ष प्राप्त होगा ॥२॥

हे अर्जुन इस प्रकार गुप्त से गुप्त अति छिपा हुआ ज्ञान तुझ को मैंने उपदेश दिया इसको विचार करके जैसी तेरी इच्छा हो कर ॥३॥ भ०गी० अ० १८।श्लोक ६१।६२।६३॥

उपरोक्त श्लोकों से तो सिद्धही हो गया कि श्री कृष्ण जी परमेश्वरावतार न थे अब वह भी प्रकाशित किया जाता है कि जिन श्लोकों में श्री कृष्ण जी ने अलंकार रूप से परमेश्वर को साकार रहित अजन्मा सिद्ध किया है ॥यथा—

अव्यक्तं व्यक्ति मापन्नं मन्यन्ते माम बुद्धयः ।
परं भाव मजानन्तो ममा व्यय मनुत्तमम् ॥४॥

अर्थ—हे अर्जुन मूर्खजन मेरे नाश रहित सर्वोत्तम भाव को न जानते हुए मुक्त सूक्ष्म निराकार को साकार (स्थूल) मानते हैं ॥४॥

नाहं प्रकाशः सर्वस्य योग माया समावृतः ।
मूढ़ोऽयं नाभि जानाति लोको मामज मव्ययम् ॥५॥

भ० गी० अ० ७।२५

अर्थ—योग माया से समावृत मैं सबको प्रकाशित नहीं हूं यह

--

मूढ़ लोग मुझ अविनाशी अजन्मा को नहीं जानते हैं ॥५॥

अविनाशीतु तद्विद्धि येन सर्व मिदं जगत् ।
विनाश मव्ययस्यास्य न कश्चित् कर्तुमर्हति ॥६॥

अ० २। ॥१७॥

अर्थ–हे अर्जुन जिसने इस चित्र विचित्र दृश्यमान जगत को बनाया वही अविनाशी है ऐसा तुम जानो इस अनिर्दिश्य अविनाशी आत्माको विनाश करने को कोई भी समर्थ नहीं ॥६॥

❁ य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम् ।
उभौतौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते ॥७॥

अ० २।१६॥

अर्थ–जो मारा जाता हुआ पुरुष इस आत्मा को मारने वाला जानता और जो इस मारे जाते हुए आत्मा को नष्ट हुआ मानता है वे दोनों ही आत्म तत्व को नहीं जानते न यह किसी को मारता और न यह किसी से मारा जाता है ॥

❁ वेदा विनाशिनं नित्यं य एनमज मव्ययम् ।
कथं स पुरुषः पार्थ कं घातयति हन्तिकम् ॥८॥

अ० २।२१॥

अर्थ–हे अर्जुन जो पुरुष इस आत्मा को उत्पत्ति रहित अव्यय विनाश रहित जानता है वह किस प्रकार किसको मरवाता और किसको मारता है अर्थात कोई आत्मा को न मारसकता है और न मरवा सकता है ॥८॥

* अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते ।
तस्मा देवं विदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि ॥९॥
अ० २।२५॥

अर्थ—यह आत्मा न इन्द्रियों से प्रगट होने योग्य यह अचिन्त अविकार है तिससे तुम भी आत्मा को इस प्रकार जानके शोक करने योग्य नहीं ॥९॥

अनादित्वा न्निर्गुणत्वा त्परमात्माऽयम व्ययः ।
शरीरस्थोऽपिकौन्तेय न करोति नलिप्यते ॥१०॥
यथासर्व गतं सौक्ष्म्यादाकाशं नोपलिप्यते ।
सर्वत्रा वस्थितो देहे तथाऽऽत्मानो पलिप्यते ॥११॥
यथा प्रकाश यत्येकःकृत्स्नं लोक मिमंरविः ।
क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारत ॥१२॥
क्षेत्र क्षेत्रज्ञयोरेव मन्तरं ज्ञान चक्षुषा ।
भूत प्रकृति मोक्षंच ये विदुर्यान्ति तेपरम् ॥१३॥
अ० १३॥३१।३४॥

अर्थ—हे अर्जुन मलिन मनुष्यादि के शरीर में रहता हुआ भी अविनाशी परमात्मा अनादि (सुख दुःख इच्छादि वा रक्तपित्तादि गुणों से रहित होने से न कर्त्ता है न लिप्त होता है ॥

---

* ७।८।९ के श्लोक को श्री कृष्ण जी ने जीवात्मा के विषय अर्जुन से कहा है सो प्रमाण यहां परइसलिएलिखा है कि जब आत्मा (जीवात्मा) अव्ययादि गुण युक्त है तो परमात्मा का भी सिद्ध हो गया ।

जैसे सब स्थूल पृथिव्यादि की अपेक्षा सूक्ष्म होने से सर्व पृथिव्यादि में व्याप्त भी आकाशतत्व व्याप्त वस्तु के दोष से दूषित नहीं होता वैसेही सर्व प्रकार के शरीरादि में व्याप्त भी परमात्मा मलिनता से लिप्त नहीं होता है॥

और जैसे एक सूर्य्य सब जगत को प्रकाशित करता है। हे अर्जुन वैसे ही जड़ का स्वामी परमेश्वर सब दृश्य पदार्थों को प्रकाशित करता है एवं क्षेत्र क्षेत्रज्ञ वा जड़ चेतन रूप प्रकृति पुरुष के भेद और पृथिव्यादि भौतिक शरीर तथा स्वभाव रूप प्रकृति से छूटने को जो योगीजन् ज्ञान रूप चक्षु से जानते देखतेहैं वे सब से परे परमात्मा को प्राप्त होते हैं ॥३३॥ ३४॥

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्त मूर्तिना ॥
मत्स्थानि सर्व भूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः॥१४॥

अ० ६।४॥

अर्थ–श्री कृष्ण जी अलंकार रूप से कहते हैं कि हे अर्जुन मुझ सूक्ष्म निराकार स्वरूप ईश्वर ने इस सब जगत को रचा सब चराचर संसार मेरे आश्रय से मुझ में स्थित है मैं उस संसार के आश्रय अवस्थित नहीं हूं ॥१४॥

अजोऽसन्न व्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपिसन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्म मायया ॥१५॥

गी० ४।६॥

अर्थ–मैं जीवात्मा अज हूं अर्थात् शरीर का जन्म हुआ है मुझ जीवात्मा का नहीं। और मेरा आत्मा अविनाशी है अर्थात् शरीर

का नाश होता है मैं अविनाशी हूं और भूतों का ईश्वर अर्थात् पंचभूतों का स्वामी हूं। अपनी प्रकृति का अधिष्ठाता होकर अपनी प्रकृति के साथ जन्म लेता हूं ॥१५॥

अत्रविषये ऽन्येषां ग्रन्थानामपि प्रमाणानि।

परमेश्वर के निराकार विषय में अन्यान्य ग्रन्थों का भी प्रमाण उद्धृत् किया जाता है।

कदाचिदात्मा न मृतो न जायते। न क्षीयते नापि विवर्द्धते क्वचित्। निरस्त सर्वाति शयःसुखात्मकः स्वयं प्रभुः सर्व गतोह्य द्वयः ॥१॥ अ० रा० राम गी० ॥३५॥

अर्थ—हे लक्ष्मण ईश्वर न कभी मरता न कभी जन्म लेता न घटता न बढ़ता है किन्तु वह प्रभु सब बड़ों से बड़ा सुख देने वाला स्वयं सर्व व्यापक और अद्वितीय है ॥१॥

ऊर्ध्व पूर्ण मधः पूर्ण मधः पूर्ण पदात्मकम्। सर्व पूर्ण स आत्मेति समाधिस्थस्य लक्षणम् ॥

अर्थ—श्री कृष्ण जी महाराज कहते हैं कि जो ऊपर नीचे और मध्य में सर्वत्र पूर्ण है वही परमात्मा है और जो ऐसे परमात्मा का ध्यान करता है वही समाधिस्थ योगी कहलाता है ॥२॥

यदेकं निष्कलं ब्रह्म व्योमातीतं निरंजनम्।

अप्र तर्क्यं मविज्ञेयं विनाशे सत्येव रंजितम् ॥३॥

अर्थ—जो एक है अर्थात् उसके तुल्य दूसरा कोई नहीं है वही ब्रह्म निराकार है और आकाशादिक २४ तत्वों से पृथक शुद्ध स्वयं प्रकाशमान् जन्मादि से रहित है ॥३॥

ब्रह्माण्ड पुराण अ० ॥१॥

कैवल्यं केवलं शान्तं शुद्ध मत्यन्त निर्मलम् ।
कारणं योग निर्मुक्तं हेतु साधन वर्जितम् ॥४॥

अर्थ—वह परमात्मा जिसने सब संसार को उत्पन्न किया है जो किसी वस्तु से मिला हुआ नहीं है और अपने कामों में जो किसी अन्य की सहायता नहीं लेता वह शुद्ध, शान्त, अत्यन्त निर्मल है ॥४॥

निर्मलं तं विजानीयात् षडूर्मि रहितं शिवम् ।
प्रभा शून्यं मनः शून्यं बुद्धि शून्यं निरामयम् ॥५॥

अर्थ—वह प्रभु काम क्रोध लोभ मोह जन्मादि से पृथक है और जड़ के समान चमकता नहीं तथा मनुष्य की तरह मन बुद्धि के वश में नहीं है किन्तु यह सबका स्वामी राग पीड़ादि से रहित है ऐसा जानना चाहिये ॥५॥

मनःस्थ मनो मध्यस्थ मनःस्थं मनो वर्जितम् ।
मनसा मन आलोक्य स्वयं सिद्धयन्ति योगिनः ॥६॥

अर्थ—मन में वास करने वाला मन की वृत्तियों को जानने वाला इस पर भी आप मन नहीं रखता ऐसे परमात्मा को योगीजन मन में विचार करके मुक्ति पाते हैं ॥६॥

तीर्थानि तोयरूपाणि देवान् पाषाणमृण्मयान् ।
योगिनो न प्रपद्यन्ते आत्मध्यान परायणाः॥७॥

उ० गीता ३०।३॥

अर्थ—गंगादि तीर्थ सब जल हैं देवता सब पत्थर मिट्टी हैं इस कारण परमात्मा का ध्यान करने वाले योगीजन् इन को नहीं पूजते ॥७॥

मनसा कल्पिता मूर्तिः नृणां चेन्मोक्ष साधिनी ।
स्वप्नलब्धेन राज्येन राजानोमान वस्तथा ॥८॥

महा निर्माण तंत्र ॥

अर्थ—यदि मनुष्य को मन से कल्पित्त की हुई पाषाणादि की प्रतिमा मोक्ष देने वाली हो तो स्वप्न के राज्य से मनुष्य राजा हो जायगा इससे मूर्ति पूजा निष्फल है॥८॥

यस्यात्म बुद्धिः कुणपेत्रिधातुके । स्वधिः कलत्रादिषु भौम इज्यधी ॥ यस्तीर्थ बुद्धिः सलिलेहिकर्हिचित् । जनेषु भिज्ञेषु सएव गोखरः ॥६

श्री मद्भाग्वत् ॥

अर्थ—जो धातु पाषाण आदि पार्थिव पदार्थों में आत्म बुद्धि

रखते हैं और नदी नाला पहाड़ गृहादि में तीर्थ बुद्धि मानते हैं और स्त्री पुत्रादि में ममता बुद्धि रखते हैं वे नर गदहे या बैल हैं ॥९॥

मृच्छिला धातु दर्वादि मूर्ता मीश्वर बुद्धयः।
क्लिश्यन्ति तपसा मूढाःपरां शान्तिं न यान्ति ये॥१०॥

महाभारत

अर्थ—जो अविनाशी अव्यय निराकार परमात्मा की पाषाण पीतल चांदी आदि की प्रतिमा बनाते हैं (पूजते हैं) वे अज्ञानी और पापी हैं ऐसे मूर्खों को कभी भी शान्ति नहीं मिलती ॥१०॥

तीर्थेषु पशु यज्ञेषु काष्ठ पाषाण मृणमये।
प्रतिमादौ मनो येषां तेषां नराःमूढ़ चेतसाः ॥११॥

अर्थ—तीर्थ और पशु हिंसक यज्ञों में काष्ठ पाषाण मृत्तिकादि प्रतिमाओं में जिनका मन रहता है वे मनुष्य मूर्ख हैं ॥११॥

जन्मापवादं द्रोहं च तथा मिथ्या च भाषणम्।
कामं क्रोधं तथा चौर्य्यं परदाराभिमर्षणम् ॥१२

वीभित्सं मरणं क्षोभम् दुष्क्रिया विविधाः।
कलौ पाखंडिनो विधाष्यन्ति विशुद्धे परमात्मनि ॥१३॥

अर्थ—कलियुग में पाखंडी लोग शुद्ध परमात्मा में ऐसे २ दोष लगावेंगे कि ईश्वर ने जन्म लिया झगड़ा किया झूठ बोला काम

क्रोध चोरी और दूसरे की स्त्रियों से भोग विलास किया और डरा तथा सबको दुखित किया आदि २ काम करके मर गया ॥१२॥१३॥

नारायण एवेदं सर्वं यद्भूतंयच्च भाव्यम्। निष्कलंको निरंजनो निर्विकल्पो निराख्यातः शुद्धो देवएको नारायणो न द्वितीयोऽस्ति कश्चित् ॥१४॥

अर्थ—जो कुछ हुआ है और होगा वह नारायण ही की कृपा से होता है वह देव निष्कलंक निरंजन निर्विकल्प निराख्यात शुद्ध एकही है दूसरा कोई नहीं ॥१४॥

अजमजर मनन्तं ज्ञान रूपं महान्तम्।
शिवममल मनादिं भूतदेहादि हीनम्॥
सकल करण हीनं सर्व भूतस्थितन्तम्।
हरि ममल ममायं सर्वगं वन्द एकम् ॥१५॥

गरुड़ पुराण अ० ११॥

अर्थ—जो परमेश्वर जन्म रहित है जिसका कभी अन्त नहीं अनन्त है, जो बुढ़ापे से रहित सब से बड़ा कल्याण स्वरूप अनादि है और पंचभूतात्मक देह रहित समस्त इन्द्रियों से हीन सर्व भूतों में स्थित मल माया विहीन सर्वत्र व्याप्त एक है उसको नमस्कार है ॥१५॥

योऽसावतीन्द्रिय ग्राह्यःसूक्ष्मोऽव्यक्तः सनातनः।

सर्वभूत मयो चिन्त्यः स एव स्वय मुद्भौ ॥ १८॥

मनु० १। ७॥

अर्थ—जो परमात्मा इन्द्रियों से नहीं किन्तु आत्मा से जानने योग्य अत्यन्त सूक्ष्म स्वरूप नित्य और सम्पूर्ण विश्वमें व्याप्त हो कर रहने वाला तथा आकार रहित अतएव अचिन्त्य है वह आपही प्रगट हुआ अर्थात उस सर्व शक्तिमान परमात्मा को कोई उत्पन्न करने वाला नहीं है ॥१७॥

॥ अवतार विषय समीक्षा ॥

रामावतार विषयः।

भद्रोभद्रया सचमान आगात् स्वसारञ्जारो अ-भ्येति पश्चात्। सुप्रकेतैर्द्युभिरग्नि र्वितिष्ठन्नु शद्भिर्वर्णै रभि राम मस्थात् ॥ पं० ज्वाला प्रसाद कृत.

अर्थ— (भद्र) राम (भद्रा) सीता जी के साथ प्रगट हुए तब जार रावण ने ऋषियों के रुधिर से उत्पन्न होने के कारण भगनी समान जानकी को हरण किया पीछे अनन्त काल पर क्रोध से प्रज्वलित रावण ने सन्मुख होकर कुम्भकर्ण आदि के जीवा-त्माओं के साथ श्रीराम की सामीप्यता को पाया ॥ यह अर्थ कर के रामावतार पं० ज्वा० प्र० जी ने सिद्ध किया है —

(या तेनोच्यते सादेवता) इस निरुक्तानुसार इस मंत्र का

अग्नि देवता है अतः अग्नि काही वर्णन इस मंत्र में किया गया है. नकि राम, सीता का और सनातनी लोगों के परममान्य महाशय सायणाचार्य जी ने भी पं० ज्वा० प्र० कृत अर्थ के विरुद्ध भाष्य किया है, अग्नि के ही विषय में, जो सर्व सम्मत हो सकता है। यथाः- भजनीय भजनीया के सहित आता है, किन्तु शत्रुओं का नाशक वह अग्नि स्वयम् चलने वाला वा भगनी आई हुई उषा के सामने आता है, तथा भले प्रकार प्रज्ञान तेजों के साथ सब ओर वर्तमान वह अग्नि श्वेतवर्ण रोकने वाले अपने तेजों से (रामम्) कालेरात्री के अंधयारे को सायं होम काल में तिरस्कार कर के स्थित होता है, राम का अर्थ सायणाचार्य 'अन्धेरा' करते हैं। ज्वा. प्र. जी दाशरथी राम कहते हैं, अतएव ज्वा. प्र. जीकी अपेक्षा आचार्य जी का भाष्य ठीक माननीय है॥

॥ कृष्णावतार विषयः ॥

कृष्णं तएम रुशतः पुरोभाश्चरिष्ण्वर्चि वपुषा-मिदेकं। यद प्रवीता दधतेह गर्भं सद्यश्चिज्जातो भवसीदुदूतः॥ ऋ. मं. ४ सू. ७ मं. ९ अ. १॥

पं० ज्वालाप्रसाद कृत अर्थः- हे भूमन् आपका सत्यानन्द चिन्मात्र रूप है और रुद्र रूप से तीन पुर को नाश करने वाला वा स्थूल व सूक्ष्म कारण देह को ग्रसने वालारूप तुरीयात्मा तिस कृष्णभा रूप को हम प्राप्त होवें, जिस आप के स्वरूप की एकही अर्चि अर्थात् ज्वालावत् अंशमात्र समष्टि जीव अनेक देहों में चिरष्णु अर्थात भोक्तृ रूप से बर्तमान है, और जो कृष्णभा को अप्रवीता अर्थात् निगड़ ग्रस्त देवकी गर्भ रूप से धारण करती भई॥

छान्दोग्य में भी कृष्ण की माता देवकी सुनी है ॥

हे भूमन् आप प्रसिद्ध हीं गर्भ से प्रादुर्भूत् होकर माता के पास से पृथक् हुए ॥ इस से श्री कृष्णचन्द्र का देवकी के गर्भ से जन्म और महेश्वरावतार तथा जीव को पूर्व निरूपित चिदंशत्व बोधन किया है ॥ यह अनर्थ करके मिश्र जी ने कृष्णावतार सिद्ध किया है। सो भी ठीक नहीं, क्योंकि इस मंत्र का भी अग्नि देवता है, अतः अग्नि का ही वर्णन होना चाहिये, इस के विरुद्ध सायणाचार्य जीने भाष्य किया है ॥ यथाः—

हे अग्ने। रुशतः रोच मानस्य ते तव अत्रेम एमन शब्देन गमन मार्ग उच्यत्ते, एम वत्मं कृष्णं कृष्ण वर्णं भवति। भाः तव संम्बन्धिनी दीप्तिः पुरः पुरस्ताद्भवति। चरिष्णु संचरण शीलम् अर्चिस्त्वदीयं तेजःवपुषां व पुष्मतां रूपवतां तेजस्विन मित्यर्थःएक मित् मुख्य मेवभवति यत् यं त्वाम् अप्रवीता अनुपगता यजमानाः गर्भ त्वज्जनन हेतु मरणिं दधते ह धारयन्ति खलु। सत्वं सद्यश्चित्सद्य एव जातः उत्पन्नः सन् दूतो भवसीदु यजमानस्य दूतो भवस्येव ॥

भावार्थः— हे अग्ने तुझ प्रकाशमान के गमन का मार्ग कृष्ण वर्ण (काला) है। तेरा प्रकाश आगे रहता है, चलने वाला तेरा तेजही सम्पूर्ण रूपवान तेजस्वियों में मुख्य है। जिस तेरे समीप न गये हुए, यजमान लोग ज्योंही तेरे गर्भ रूप अरणि को धारण करते हैं, त्योंही तू उत्पन्न होते ही दूत अर्थात् यजमान का दूत बन जाता है।

प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तर जायमानो बहुधा विजायते। तस्य योनिं परिपश्यन्ति धीरा स्तस्मिन्ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा॥ यजु० ३१। १९ ॥

इस मंत्र से भी अवतार सिद्ध किया है, अतः मंत्रका शब्दार्थ प्रकाशित किया जाता है और पं. ज्वा. प्र. जी के भाष्य के विरुद्ध महीधर ने भी किया है, इस लिये पं. जी का किया अर्थ ठीक नहीं।

शुद्ध अर्थ यह है ॥

जो (अजायमानः) आप देह युक्त नहीं होता (प्रजापतिः) प्रजा का रक्षक (गर्भे) गर्भस्थ जीवात्मा में और (अन्तः) सब के हृदय में (चरति) वर्तमान है (बहुधा) बहुत प्रकारों से (विजायते) विविध प्रगट है [तस्य] उस के (योनिम्) स्वरूप को (धीराः) भीतरध्यान करने वाले लोग (परिपश्यन्ति) सब ओर से देखते हैं। (तस्मिन्ह) उसी में (विश्वाभुवनानि) सब लोक लोकान्तर (तस्थु) ठहरे हैं ॥

समीक्षाः— मन्त्र का अभिप्राय अवतार विषय में यदि होता तो (परिपश्यन्ति) सब ओर ध्यान करने वाले देखते हैं, यह पद न होता क्योंकि देहधारी सर्वत्र नहीं देखा जाता अतः स्पष्ट है कि चर्म चक्षु से नहीं दीखताहै किन्तु आत्माही में ध्यान करने (ज्ञान) से जाना जाता है ॥

नृसिंहावतार विषयः ।

प्रतद्विष्णुः स्तवते वीर्येण मृगोन भीमः कुचरो गरिष्ठाः। यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधि क्षियन्ति भुवनानि विश्वा ॥ ऋ० १।१५४।२॥

इस मंत्र का अर्थ न जानकर ज्वा. प्र. जीने अज्ञान वश नृसिंहावतार सिद्ध किया है, सोभी ठीक नहीं क्योंकि मंत्र में नरसिंह जी का नाम नहीं है, किन्तु सिंह के दृष्टान्त से परमात्मा का उग्र पराक्रम दिखाया है। देखो भाष्य म. स्वा. दयानन्द सरस्वती जी महाराज कृत। यथाः-(यस्य) जिस सर्व व्यापक विष्णु के रचे (त्रिषु) जन्म स्थान नाम इन ३ (विक्रमणेषु) विविध सृष्टि क्रमों में (विश्वा भुवनानि) समस्त लोक लोकान्तर (अधिक्षियन्ति) आधार में निवास करते हैं (तत्) [लिंग व्यत्ययः] वह (विष्णुः) सर्व व्यापक परमेश्वर [वीर्येण] पराक्रम से [प्रस्तवते] सब लोकों को प्रस्तुत करता है॥ दृष्टान्त (न) जैसे (गिरिष्ठाः) पर्वत कन्दराओं में स्थित [भीमःमृगः] भयानक मृग अर्थात् मृगेन्द्रसिंह॥

त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमारो उत वा कुमारी त्वं जीर्णो दण्डेन वञ्चसि त्वं जातोभवसि विश्वतो मुखः॥ अथर्व १०।४।५।२७॥

यह मंत्र भी अवतार सिद्धि में दिया है, परन्तु इस मंत्र में भी किसी अवतारादि का वर्णन नहीं है, किन्तु प्रत्येक जीव स्त्री

पुरुष योनियों में घूमता बाल युवा वृद्ध होता है, उसका वर्णन है भक्ति राम कृष्ण अवतरादि का। यथाः—

अर्थः— हे जीव तू कभी स्त्री कभी पुरुष होता है; लड़की और लड़का बनताहै, तू बूढ़ा होकर लठिया के सहारे चलताहै, क्योंकि तू विश्वतोमुख अर्थात् सब ओर रुख फेरताहै, और जन्म लेताहै।

यतो यतः समीहसे ततो नोऽअभयं कुरु।
शन्नः कुरु प्रजाभ्योऽभयं नः पशुभ्यः॥

इस मन्त्र का यह अर्थ पं. ज्वाला प्रसाद ने किया है, कि हे परमेश्वर तुम जिस २ अवतारादि रूप से चेष्टा करते हो, उस २ रूप से हम को अभय करो और प्रजा को सुख करो॥ इस अर्थ से भी अवतारादि की पुष्टी की है, अतः मंत्र का शुद्ध अर्थ लिख कर हम आशा करतेहैं कि विद्वान लोग स्वयं विचारें, कि कौनसा अर्थ शुद्ध व माननीय है॥

अर्थ स्वा. द. न. कृत.

(यतो यतः) यस्मात् यस्मात् स्थानात् [समीहसे] सम्यक् चेष्टसे (ततः) तस्मात् [नः] अस्मान् (अभयम्) निर्भयम् (कुरु) (शम्) सुखम् (नः) अस्माकम् (कुरु) (प्रजाभ्यः) अभयम् (नः) अस्माकम् (पशुभ्यः) गवादिभ्यः॥

अर्थ—हे भगवान आप [यतो यतः] जिस२ स्थान से (समीहसे) सम्यक चेष्टा करते हो (ततः) उस उस स्थान से (नः) हम को (अभयम्) भय रहित (कुरु) कीजिये (नः) हमारी [प्रजाभ्यः] प्रजाओं से और (नः) हमारे (पशुभ्यः) गवादि पशुओं से (शम्) सुख और निर्भय (कुरु) कीजिये॥

अश्म वर्म मेऽसि यो मा प्राच्या दिशोऽघायु रभि दासात्। एतत्स ऋच्छात् ॥ अ० ५।१०।१॥

ज्वा० प्र० ने इस का यह अर्थ किया है, कि हे इष्ट देव मूर्ति व्यापक परमेश्वर तुम मेरे कवच हो इत्यादि ॥

समीक्षा — मंत्र का अर्थ यह है, (अश्म वर्म) पाषाण तुल्य पुष्ट कवच (मे) मेरा (असि) है जो (अघायुः) पापी शत्रु (मा) मुझे (प्राच्या दिशः) पूर्व दिशा से (अभिदासात्) मारे [सः] वह दुष्ट (एतत्) इस मार को [ऋच्छात्] प्राप्त हो ॥ प्रत्येक दिशाओं में कवच द्वारा शत्रुओं से बचने का वर्णन है अन्य कुछ नहीं ॥

वराहावतार विषयः ।

इयत्यग्र आसीन्मखस्य तेऽद्य शिरो राध्यासन्देव यजने पृथिव्याः मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे ॥

यजु अ० ३७।५॥

भाष्य— पं० ज्वालाप्रसाद मुरादाबादी कृत॥ अग्रे, आदौ वराहोद्धारणसमये पृथिवी (इयती) एतत् प्रमाण प्रादेश मात्री (आसीत्) हे पृथिवी (अद्यते पृथिव्याः देव यजने मखस्य) शिरः महावीरं (राध्यासम्) (मखाय त्वा) त्वां गृह्णामि (मखस्य शीर्ष्णे) महावीरायित्वा गृह्णामि ॥

अर्थ—आदि में अर्थात् वराहावतार के समय यह पृथिवी प्रादेश मात्र थी, हे पृथिवी अब तेरे देव यजन स्थान में महावीर की मूर्ति को सम्पादन करूं। हे वराह विहित, मृतयज्ञ के लिए तुझे लेता हूं (वराह की खोदी मिट्टी ग्रहण करे) ॥

इस मंत्र का यह अर्थ करके ज्वा० प्र० जी ने वराहावतार सिद्ध किया है सो ठीक नहीं, क्योंकि यहां पर इतना ही लिखना उचित है कि इसी मंत्र पर म० स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने भी भाष्य किया है वह देखिए और विचारिये कि कौन सा अर्थ शुद्ध और प्रमाणिक है ॥

भाष्य—महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती कृत—(इयति) एतावति (अग्रे) (आसीत्) अस्ति (मखस्य) यज्ञस्य (ते) तव (अद्य) (शिरः) उत्तम गुणम् (राध्यासन्) (देवयजने) विदुषांपूजने (पृथिव्याः) भूमेः (मखाय) सत् काराख्याय (त्वा) त्वाम् (मखस्य) संगति करणस्य (त्वा) (शिर्ष्णे) उत्तमत्वाय ॥ हे विद्वान मैं (अग्रे) पहिले (मखाय) सत्कार रूप यज्ञ के लिए (त्वा) तुझको (मखस्य) संगति करण की (शीर्ष्णे) उत्तमता के लिए (त्वा) तुझको (राध्यासन्) सिद्ध करूं जिस (ते) आप के (मखस्य) यज्ञ का (शिरः) उत्तम गुण [आसीत्] उन आपको (अद्य) आज [पृथिव्याः] भूमि के बीच (इयति) इतने (देवयजने) विद्वानों को पूजने में सम्यक सिद्ध होऊं ॥

भावार्थ—वेही अध्यापक श्रेष्ठ हैं जो पृथिवी के बीच सब को उत्तम शिक्षा और विद्या से युक्त करने को समर्थ हैं ॥

मूर्तिपूजा समीक्षा।

अब जिन २ प्रमाणों द्वारा पौ० पंडितों ने मूर्ति पूजा सिद्ध कियी है उसकी समीक्षा की जाती है।

पं० ज्वाला प्रसाद जी ने द. ति. भा. पृष्ठ ३०८ पंक्ति ३ में

मा असि प्रमाअसि प्रतिमा असि।

तैत्ति० अ० ४। ५। का यह प्रमाण देके। हे महावीर तुम ईश्वर की प्रतिमा हो इत्यादि अर्थ करके मूर्तिपूजा सिद्ध कियी है॥ इसका अर्थ सायणाचार्य नें यज्ञ मापने के विषय में किया है आप प्रकरण विरुद्ध मूर्तिपूजा सिद्धि में लगाते हैं। सायणाचार्य जी मा, प्रमा, प्रतिमा, का अर्थ मापने का करते हैं और ज्वाला प्र० जी मूर्ति अर्थ करते हैं सा० जी हे परिधे कहते हैं और आप हे महावीर कहते हैं, यहां ईश्वर का वर्णन नहीं है न पूर्व किसी मंत्र की अनुवृत्ति ही आती है और आचार्य का भाष्य भी ज्वाला प्र० के विरुद्ध यज्ञ प्रकरण में है यथाः—

हे यज्ञ वेदी की परिधि पूर्व दिशा में अग्र भाग होने से दक्षिण वा उत्तर वर्त्ती तू (मा असि) महावीर स्थान को मापने और "इतना है" यह परिच्छिन्नता बताने को समर्थ है। तथा हे परिधे उत्तर अग्रभाग होने से पूर्व वा उत्तर वर्त्ती तू (प्रमाअसि) अत्यन्त करके मापने को समर्थ है।

नमस्ते हरसे शोचिषे नमस्ते अस्त्वर्चिषे। अन्यांस्तेऽअस्मत्तपन्तु हेतयः पावकोऽअस्मि

मस्य७ शिवो भव ॥य० ३६।२०॥

भाष्यम्—(स्वामी दयानन्द कृत) (नमः) (ते) तुभ्यम् (हरसे) हरति पापानि तस्मै (शोचिषे) प्रकाशकाय (नमः) (ते) तुभ्यम् [अस्तु] (अर्चिषे) स्तुति विषयाय (अन्यान्) (ते) (अस्मत्) [तपन्तु] (हेतमः) वज्र इव व्यवस्थाः (पावकः) पवित्र कर्त्ता (अस्मभ्यम्) (शिवः) कल्याण कारकः (भव) ॥२०॥

भाषार्थ—हे भगवन् ईश्वर (हरसे) पापहरने वाले (शोचिषे) प्रकाशक (ते) आप के लिए (नमः) नमस्कार तथा (अर्चिषे) स्तुति के योग्य (ते) आप के लिए (नमः) नमस्कार (अस्तु) प्राप्त होवे (ते) आप की (हेतमः) वज्र के तुल्य अमिट व्यवस्था (अस्मत्) हमसे (अन्यान्) भिन्न अन्यायी शत्रुओं को (तपन्तु) दुःख देवे आप (अस्मभ्यम्) हमारे लिए (पावकः) पवित्र कर्त्ता (शिवः) कल्याणकारी (भव) हूजिये ॥

प्रतिमा पूजन की नित्यता।

यज्ञेन यज्ञ मयजन्त देवा स्तानि धर्माणि प्रथमा न्यासन्। तेह नाकं महिमानः सचन्तः यत्र पूर्वे साध्याः सन्तिदेवाः ॥ य० ३१।१६॥

अर्थ—परमेश्वर की प्रतिमा द्वारा विष्णु का पूजन विद्वानों ने किया सनातन धर्म यही है प्रतिमा पूजक मोक्ष को प्राप्त होते हैं

इत्यादि अर्थ करके गोस्वामी जी ने प्र० त० नाम की पुस्तक में प्रतिमा पूजन की नित्यता सिद्ध कियी है ॥

समीक्षा—इस मंत्र में प्रतिमा वाचक कोई शब्द नहीं, यदि प्रतिमा पूजन करना ही सनातन धर्मियों को मोक्ष देने वाला होतो योगी जन क्यों व्यर्थ कष्ट सह योगाभ्यासादि करें क्योंकि बिना योग से ज्ञान होता नहीं और बिना ज्ञान के परमेश्वर प्राप्ति या मोक्ष मिलता नहीं अतः प्रतिमा पूजन करना सर्वथा निष्फल है और न इस मंत्र का ऐसा अर्थ है, जोकि गो स्वामी जी ने किया है मन्त्र का अर्थ यह है निरुक्तादि के अनुसार यथाः—

(देवाः) विद्वानों ने (यज्ञेन) ज्ञान यज्ञादि से [यज्ञम्] परब्रह्म परमात्मा को (यज्ञोवैविष्णुः श० का० १।१॥ अर्थात् यज्ञ नाम व्यापक विष्णु का है) (अयजन्त) पूजते हैं (तानि) वेही (धर्माणि) यज्ञादि रूप धर्म (प्रथमानि) सब कामों की आदि में करणीय हैं [ते] वे विद्वान् [महिमानः] महत्व से युक्त हुए (यत्र) जिस सुख में (पूर्वे) पूर्वज (साध्यः) साध्य तथा (देवाः) विद्वान (सन्ति) हैं उस (नाकम्) मुक्ति सुखको (ह) निश्चय करके [सचन्त] प्राप्त होते हैं ॥

एह्यश्मान मातिष्ठा श्माभवतु ते तनुः कृण्वन्तु विश्वे देवा आयुष्टे शरदः शतम् ॥

अथर्व का० २। सू० १३। मं० ४॥

अर्थ—इस मंत्र का भी पं० ज्वाला प्रसाद ने "हे इष्टदेव पाषाण मूर्ति में विराजमान हूजिए पाषाण मूर्ति आपका शरीर हो सब देवता इस आपके शरीर की आयु अनन्त वर्षों की करें" ॥ यह अर्थ करके प्रतिमा पूजन सिद्ध किया है ॥

समीक्षाः—पक्षपात मनुष्य को सत्सिद्धान्त से अवश्य ही गिरा

देता है भला स्वा० प्र० जी को इतना भी ज्ञान नहीं कि देवतागण क्या परमेश्वर की भी आयु बढ़ा सकते हैं और क्या परमेश्वर पत्थर की मूर्ति में प्रथम से नहीं है जो आवेगा। क्या करें! इनको शुद्धा शुद्ध से तो प्रयोजन नहीं केवल स्वार्थ सिद्ध्यर्थ कबीर पंथियों के समान जहां मिट्टी पीतल पाषाण शब्द वेद में पाया प्रकरण विरुद्ध मूर्ति पूजा ही सिद्ध करने लगे ॥

सायणाचार्य जी ने इनके अर्थ के विरुद्ध यह भाष्य किया है जोकि सनातनी भाई भी स्वीकार करेंगे किन्तु इनके किए अशुद्ध अर्थ को कोई भी विद्वान स्वीकृत न करेंगे ॥

सायण भाष्यम्—हे माणवक। एहि आगच्छ। अश्मानम् अातिष्ठ, दक्षिणेन पादेन क्रम। ते तव तनूः शरीरम् अश्माभवतु। अश्मवत् रोगादि विनिर्मुक्तं दृढं भवतु। विश्वे देवाश्च ते तव शत संवत्सर परिमितम् आयुः कृण्वन्तु कुर्वन्तु ॥

मंत्रार्थ—हे बालक आ पत्थर पर बैठ तेरा शरीर पत्थर अर्थात् पत्थर के तुल्य रोगादि रहित पुष्ट हो। सब देवता तेरी १०० वर्ष की आयु करें॥ (संस्कार समय के लिये कहने का मंत्र है)

अनयोर्युक्ति प्रमाणानि च ॥

मूर्ति पूजा अवतार निषेध में युक्ति प्रमाण भी लिखा जाता है।

१ जिस परमात्मा की शक्ति से सूर्य्य चन्द्रमादि अपना कार्य्य करते हैं और सहस्त्रशः सूर्य्य द्युलोकादि जिसके प्रकाश की बराबरी नहीं कर सकते क्या वह थोड़े [तुच्छ) कार्य्य के लिए अवतार ले सकता है ? कभी नहीं ॥

२ जो सर्वत्र व्यापक है वह मूर्तिमान नहीं हो सकता, यदि हो जावे तो सर्व व्यापक नहीं रहे ॥

३ जिसका कोई रूप रंगादि नहीं उसकी प्रतिमा नहीं बन सकती क्योंकि प्रतिमा [मूर्ति] उसी की हो सकती है कि जिसका कोई रूपादि हो ॥

४ मन्दिरों में प्रायः राम, कृष्ण, शिवादि की मूर्तियां देखने में आती हैं किसी में परमेश्वर की नहीं, अतः परमेश्वर मूर्तिमान नहीं ॥

५ किसी मनुष्य ने परमात्मा को अपने नेत्रों से नहीं देखा है अतः बिना देखे उसकी मूर्ति बनाना मानना कितनी अज्ञानता है ॥

६ जो पदार्थ साकार है वह सर्वदा एक रस और अचल नहीं रह सकता किन्तु परमात्मा अचल अव्यक्त है, अतः साकार नहीं ।

७ पाषाणादि जड़ पदार्थों में परमेश्वर की भावना करना यदि सम्भव है, तो तदनुसार मूर्तिस्थ परमेश्वर पर पुष्प, चन्दनादि वृक्षस्थ परमात्माही को चढ़ाना क्या उचित है ॥

८ सर्व व्यापक का आवाहन विसर्जन करना भी ठीक नहीं क्यों कि आवाहन विसर्जन स्थित् एक देशीय पदार्थ का होता है, सर्वत्र व्याप्त का नहीं ॥

९ पाषाणादि मूर्ति पूजा के करने से ही यदि ईश्वर की प्राप्ति होती तो ऋषिलोग जन्म जन्मान्तर तक योगादि साधन क्यों करते। अतः ज्ञान से परमात्मा को जान सकते हैं, मूर्ति पूजादि से नहीं॥

१० जीवात्मा तो बन्धन से छूटने का उपाय करता है, और परमात्मा जो कि बन्ध मोक्ष दोनों से पृथक है, वह बन्धन में क्यों पड़े, अतः अवतारादि का होना ठीक नहीं॥

॥ इतीश्वर निराकार निरूपणं समाप्तम् ॥

पुस्तक सहायक ग्राहक सज्जनानाञ्च सूची धन्यवादेन सह प्रकाश्यते।

१	श्रीमान् पं० राधाकृष्ण शर्मा जी प्रधान आ. स. हीवरखेड़ (अकोला)	१०)
२	श्रीमान् पं० पूर्णानन्द शर्मा उप प्रधान आ. प्र. नि. सभा म. प्र. स्थान स्टेशन करेली	७)
३	श्रीमान् पं० इन्द्रदत्त शर्मा जी आर्योपदेशक सं. मंत्री व. सु. सभा जबलपुर	
४	श्रीमान् पं० रामनाथ त्रिपाठी जी पचरांव (मिर्जापुर)	
५	श्रीमान् बाबू कुचन्ना व्यङ्कैयाजी आर्य पोस्टमास्टर द्विगरस (बरार)	५)
६	श्रीमान् पं. शिव कुमार मिश्रजी खोराडीह जि०मिरजापुर	२॥)
७	श्रीमान् पं. रामाधीन जी मिश्र बेमेतरा [दुर्ग]	२)
८	श्रीमान् ठाकुर तख्तसिंह वर्म्मा मंत्री आ. स. पिपरिया	२)
९	महाशय माधो चुन्नीलाल जी वर्मा प्र. आ. स. मोहद	२)
१०	बाबू मोतीलाल जी गुप्त मंत्री आ. स. अमरावती	२)
११	सेठ ताराचन्द जी आर्य रमखिरिया (जबलपुर)	२)
१२	सेठ नरसिंहदास जी रईस आर्य्य मोहगांव (छिंदवाड़ा)	२)
१३	ठाकुर गणपतिसिंह वर्मा जी मंत्री आ. स. बलौदा बा. जिला रायपुर	२)
१४	पं० मोजीलाल शर्म्मा जी मंत्री आ. स. सुलतानपुर	१)
१५	पं० ओंकार मिश्र जी मंत्री आर्य स. बुरहानपुर	१)
१६	पं० रामदयालु शर्मा जी पेन्शनर कामठी	१)
१७	सखाराम जी पटवारी धनगांव निमाड़	१)
१८	पं. विश्वेश्वराचार्य्य जी आर्य अमरावती	१)

१९ बाबू निबारणचन्द्र जी स्टे. मा. बोरखेड़ी जी. आई. पी. १)
२० बाबू भोलानाथ जी मंत्री आर्य स. पलोहा नरसिंहपुर १)
२१ बाबू काशीराम जी हे. मा. आर्य्य बाबई (हुशंगाबाद) १)
२२ बाबू रामाधीन जी अगरवाला आर्य्य चन्दिया [रीवां] १)
२३ पं. भैयालाल जी शर्मा प्र. आ. स. हरई नरसिंहपुर १)
२४ पं. ठाकुरप्रसाद जी शर्मा कल्यानपुर (नरसिंहपुर) १)
२५ ठाकुर खुमानसिंह जी आर्य पु. ई. बाबई १)
२६ बाबू चन्द्रभान देवमणीजी प्र. आ. स. चांदूर रेल्वे १)
२७ सेठ सागरमल हरिवल्लभ जी आर्य इछावर १)
२८ सेठ धोकलमल गनपतलाल जी नागपुर १)
२९ दाऊ भोलाशाह जी आर्य झलमला १)
३० पूरनगिरी जीवन गिरीजी प्र. आ. स. लभरा रायपुर १)
३१ बाबू रामसुमेर जी प्र. आ. स. धामनगांव १)
३२ ठाकुर हरनामसिंह धर्म्मा जी प्र. आ. स. सिरोंज १)

। ओ३म् ।

॥ आर्य्य समाज के नियम ।

(१) सब सत्यविद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सब का आदि मूल परमेश्वर है ॥

(२) ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र, और सृष्टिकर्त्ता है। उसी की उपासना करनी योग्य है ॥

(३) वेद सत्यविद्याओं का पुस्तक है वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है ॥

(४) सत्यग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये ॥

(५) सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य का विचार करके करने चाहिये ॥

(६) संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना ॥

(७) सब से प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिये ॥

(८) अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये ॥

(९) प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिये किन्तु सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझना चाहिये ॥

(१०) सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतंत्र रहना चाहिये और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतंत्र रहें ॥

॥ शुद्ध्यशुद्धि सूचीपत्रम् ॥

पृष्ठे	पङ्क्तौ	अशुद्धम्	शुद्धम्
१	९	त्वति	त्वाति
३	२	नाहिं	नहि
५	२	न्यातेति	न्यानतेति
५	१२	रूपण	रूपेण
५	२२	आप्नुवत	आप्नुवन्
६	४	तस्मिन	तस्मिन्
६	१०	तय्यतो	तथ्यतो
६	१५	व्यदधात	व्यदधात्
६	१५	पर्यगात, सव,	पर्य्यगात् , सर्व,
६	१६	यत	यत्
६	१६	अकयम	अकायम्
६	१७	अव्रणम	अव्रणम्
६	१८	विद्धम	विद्धम्
७	७	सूट्ट	सूष्ट्र
८	२	य० ३८ ॥	य० ३२ ॥
८	५	य०अ०२ ॥४॥३२॥,	य०अ० ३२।२॥ ४॥
८	८	पूर्णात	पूर्णात्
८	९	उर्द्धत्रम	ऊर्ध्वम्
८	११	य० ३८ ॥	य० अ० ३२ ॥
८	१८	य० ३८ ॥	य० अ० ३२ ॥
८	२१	जातः	जात
९	५	हन्यात	हन्यात्
९	८	य० अ० ३८ ॥	य० अ० ३२ ॥
९	२१	भूमीः	भूमी
१०	३	सम्यक	सम्यक्

पृष्ठे	पङ्क्तौ	अशुद्धम्	शुद्धम्
१०	४	सम	सम्
१०	२०	३३।७९॥	य० अ० ३३।७९॥
१०	२२	निपातनम	निपातनम्
१०	२४	विद्वान	विद्वान्
११	२	२।१९॥	२॥१८॥
११	३	छान्द्रसः	छान्दसः
११	१५	साम० उ० १।१॥	सा०उ०अ० १खं०४
१२	६	यस्मिन्न	यस्मिन्
१२	१०	यँ० अ० ३०।९॥	य० अ० १७।३०॥९॥
१४	१	यूयम	यूयम्
१४	१	युष्माकम	युष्माकम्
१४	२	प्रहेतारम	प्रहेतारम्
१४	२	अप्रहितम	अप्रहितम्
१४	५	हेत्तारम	हेत्तारम्
१४	६	वत्तमम	वत्तमम्
१४	६	अतूर्त्तम	अतूर्त्तम्
१४	१० से १३ तक उपरोक्त शब्द हल् चाहिये सस्वर छप गया है ॥		
१५	१०	शतम	शतम्
१५	१०	त्वाम	त्वाम्
१५	११	व्याप्नवन्ति	व्याप्नुवन्ति
१५	१२	व्याप्नवन्ति	व्याप्नुवन्ति
१५	१२	वज्रिन	वज्रिन्
१५	१२	सहस्रम	सहस्रम्
१५	१४	जातम	जातम्
१५	१७ से २२ तक उपरोक्त शब्द सस्वर छपे हैं हल् चाहिये ॥		
१६	३	न पञ्चामो	न पञ्चमो
१६	५	निगसदंहः	निगत संहः

पृष्ठे	पङ्क्तौ	अशुद्धम्	शुद्धम्
१८	१७	गुक्तात्मनः	मुक्तात्मनः
२०	५	द्विद्विता	द्विदिता
२१	९	येनाहुमनो	येनाहुर्मनो
२२	१२	यत्प्रणेन	यत्प्राणेन
२२	१२	प्राणीति	प्राणिति
२४	१९	विवान	विश्वास
२९	३	मेकात्म	मेकात्म्य
२९	४	आत्म	आत्मा
२९	१३	शरीर	शारीर
३०	१	दक्षिण, मुत्तर,	दक्षिणः, मुत्तरः
३१	७	चन्त	अन्न
३२	८	मच्छा	मच्छाय
३२	११	किंचिन	किंचन
३३	२	घत्रा	द्यावा
३३	३	दशमन्येति	दिशमन्वेति
३३	६	शरीरम	शरीरम्
३४	७	सत	एषत
३५	९	मूर्त्तः	मूर्त्तः पुरुषः
३५	१५	तद्यात्म	तद्यदात्म
३६	१०	सूक्ष्माच्च	सूक्ष्माच्चतत्
३९	१	पनिषद	पनिषदः
३९	४	भास	भासं
४२	१२	भूत्वात्	भुत्वात्
४६	१	श्य	श्यै
४७	१	अविनाशी	अविनाशि
४७	८	चैन्यं	चैनं
४८	१८	विषय	विषय में
४९	११	मूर्तिना	मूर्त्तिना
५२	४	मृण	मृण्

पृष्ठे	पङ्क्तौ	अशुद्धम्	शुद्धम्
५२	१७	धी	धीः
५३	४	दर्वादि	दार्व्वादि
५३	१०	मृण	मृण्
५३	११	तेषां	ते
५५	१२	वर्णे	वर्णै
५५	१५	अनन्त	अन्त
५६	१४	एव	एम
५६	१४	वर्चि	वर्चिर
५७	६	एमन	एमन्
५७	१२	तेजस्विन	तेजस्विना
५८	११	तस्थु	तस्थुः
५६	३	गरिष्ठाः	गिरिष्ठाः
६०	३	स्री	स्त्री
६१	१३	त्व	त्वा
६४	४	हेतमः	हेतयः
६४	१०	हेतमः	हेतयः
६४	१८	न	ने
६५	१७	तनुः	तनूः

निवेदन ।

विशेष भ्रमणोपदेश में रहने से प्रूफ़ न देख सका जिस्से अधिक अशुद्धियां हो गई हैं जिसका शुद्धाशुद्ध पत्र लगा दिया है और जो अशुद्ध हो पाठक् महाशय कृपया सुधार लें.

ग्रंथकर्त्ता ।

सामाजिक पुस्तकें

कल्प वृक्ष	=)
अमृत भाण्डागार	≡)
ज्ञानोत्तेजक	≡)
वेद पुराण की शिक्षा	=)
तीर्थ राज	)॥
परदा से हानि	=)
स्वर्ग प्राप्ति	=)
सुधार	-)
ओम् स्मरणी (भजन)	)॥
आर्य समाज क्या है	-)
पुरुष का भूषण क्या है	)॥
शिवउमा विवाह	=)
हरितालिका तीजा की कथा का विचार	=)
स्वामी दयानंद का हिन्दू जाति पर उपकार	-)
ईशोपनिषद् भाषा टीका	-)
प्रार्थना पुस्तक दोनों भाग	)॥
मूर्ति पूजा प्रचार सई	॥।) सैकड़ा

(मोटो) ओ३म्, नमस्ते, गायत्री मंत्र आ० स० के नियम सुनहले बेल बूटे दार की० फी०)॥ तथा काले लाल स्याही के छपे की० फी०)॥

आर्य समाज के नियम छोटे	।) सैकड़ा
मृत्यु	-)
आर्य भजन सग्रंह	=)

इनके सिवाय और भी सब किस्म की सामाजिक व दीगर पुस्तकें हरवक्त बिक्री के लिये मौजूद रहतीं हैं. बड़ा सूचीपत्र मुफ्त मंगाकर देखिये।

पता:—मैनेजर स० वि० प्रेस
नरसिंहपुर सी. पी.